* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

भगवती महाकाली

भगवती महालक्ष्मी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, नवम्बर २०१७ ई० | संख्या ११
पूर्ण संख्या १०९२

महिषासुरमर्दिनी कमलासना भगवती महालक्ष्मीका ध्यान

ॐ अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

मैं कमलके आसनपर बैठी हुई प्रसन्न मुखवाली महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मीका भजन करता हूँ, जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं।

[श्रीदुर्गासप्तशतीमें मन्त्रमहोदधिसे संकलित ध्यान]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, नवम्बर २०१७ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सन् २०१८ के लिये शुल्क
एकवर्षीय ₹२५०
पंचवर्षीय ₹१२५०

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय ₹२२०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—तुम जो शरीर, धन, स्त्री, स्वामी, पुत्र और आत्मीय आदिमें मोहवश प्रीति करते हो, उसमें तुम्हें कम त्याग नहीं करना पड़ता, परंतु उस त्यागका तुम्हें कोई श्रेष्ठ फल नहीं मिलता। मिलता है—केवल दुःख, नैराश्य और बन्धन ही। यदि यही प्रीति मोहवश न करके ईश्वरके लिये करने लगो, यदि यही त्याग भगवान्‌की सेवाके भावसे करने लगो तो तुम्हारा महान् कल्याण हो सकता है।

याद रखो—स्नेह, प्रीति और तज्जनित त्याग जब भोगोंके प्रति होता है तो उसका नाम आसक्ति है और भगवान्‌के प्रति होता है तो उसका नाम भक्ति है।

याद रखो—भोगासक्त सकामी पुरुषके हृदयमें भक्तिका निवास नहीं होता, कामना पूर्ण नहीं होती, तबतक तो उसके हृदयमें वैसे आग लगी रहती है और यदि कहीं कामनाकी पूर्ति हुई तो कामनाकी आग और भी बढ़ जाती है। इसलिये भक्तिदेवी उससे दूर हट जाती हैं। भक्तिकी प्राप्तिके लिये विषय-कामनाका त्याग अति आवश्यक है।

याद रखो—कामनाके विषयको बदलकर उसे शुद्ध कर लोगे तो फिर वह स्वतः ही प्रेमके रूपमें परिणत हो जायगी। अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये होनेवाली इच्छाका नाम 'काम' है और भगवत्प्रीत्यर्थ होनवाली इच्छाका नाम 'प्रेम' है। कामनाका विषय इन्द्रिय-सुख न हो, भगवत्प्रीति हो। ऐसा होते ही कामना प्रेमके रूपमें परिणत होकर विशुद्ध हो जायगी।

याद रखो—प्रेममें प्रेमास्पदकी प्रीतिके अतिरिक्त अन्य कोई कामना रहती ही नहीं। रहती है तो वह प्रेम नहीं है, प्रेमके नामपर मोह बैठा हुआ है। प्रेमके साम्राज्यमें बसनेवाला प्रेमी भक्त अपना सर्वस्व श्रीभगवान्‌के अर्पण करके भगवान्‌को अपना बना लेता है। उसके धन, मकान, पुत्र, स्त्री, यश, कीर्ति आदि सब भगवान्‌के हो जाते हैं और भगवान् उसके बन जाते हैं।

इसलिये फिर वह जो कुछ करता है, सो अपने प्रेमास्पद भगवान्‌के लिये ही करता है।

याद रखो—तुम अपने वर्णाश्रमानुसार जो कुछ करते हो, उसे छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। स्त्री-पुत्र, घर-परिवार आदिकी सेवा करते हो, उसे भी वैसे ही करते रहो; परंतु करो सब कुछ भगवत्प्रीत्यर्थ। जब तुम्हारे सारे काम भगवान्‌के लिये होने लगेंगे, तब उनमें-से दोष-पाप अपने-आप ही निकल जायँगे; क्योंकि फिर तुम उन्हीं कामोंको करोगे, जिनको भगवान् पसंद करते होंगे और भगवान् उन कार्योंको ही पसंद करते हैं, जो शास्त्रोक्त, सर्वथा निष्पाप, सर्वहितकारी और मंगलमय होते हैं।

याद रखो—शास्त्रोक्त कर्मका सम्पादन यथार्थमें उसीके द्वारा होता है, जो शास्त्रके आत्मा तथा प्रतिपाद्य भगवान्‌के लिये कर्म करता है; क्योंकि उसका अपना पृथक् कोई स्वार्थ रह ही नहीं जाता। पृथक् भोग भोगनेकी लालसा उसकी रहती ही नहीं। जितने भी शास्त्रविरुद्ध आचरण होते हैं, वे सब स्वार्थवश या भोग-लालसाके कारण होते हैं। जब अपने लिये कर्म होंगे ही नहीं, केवल भगवान्‌के लिये ही होंगे, तब अशास्त्रीय क्यों होंगे? वरं वस्तुतः उसीके कर्म शास्त्रीय होंगे।

याद रखो—जो पुरुष भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करता है, वही जगत्‌की यथार्थ सेवा करता है, क्योंकि उसका उन कर्मोंमें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ रहता ही नहीं। कर्ममें विष भरनेवाला तो स्वार्थ ही है। जहाँ स्वार्थ है, वहाँ चाहे कितनी ही त्यागकी बातें की जायँ, यथार्थ त्याग नहीं आता। अतएव उसका विष भी नहीं निकल पाता। निर्दोष विषरहित कर्मसे ही जगत्‌का कल्याण होता है।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती महाकाली

प्रलयकालमें सम्पूर्ण संसारके जलमग्न होनेपर भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें सो रहे थे। उस समय भगवान्के कर्णकीटसे उत्पन्न मधु और कैटभ नामक दो घोर राक्षस ब्रह्माको मारनेको उद्यत हो गये। भगवान्के नाभिकमलमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने असुरोंको देखकर भगवान्को जगानेके लिये एकाग्रहृदयसे भगवान् श्रीहरिके नेत्रकमलमें स्थित योगनिद्राकी स्तुति की—

'हे देवि! आप ही स्वाहा, स्वधा और वषट्कार हैं। स्वर भी आपके ही स्वरूप हैं। आप ही जीवनदायिनी सुधा हैं। आप ही नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन मात्राओंके रूपमें स्थित हैं तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, वह भी आप ही हैं। आप ही इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली हैं; आप ही महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहस्वरूपा हैं; दारुण कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी आप ही हैं। आपने जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुको भी योगनिद्रावश कर दिया है और विष्णु, शंकर एवं मैं (ब्रह्मा) शरीर ग्रहण करनेको बाधित किये गये हैं। ऐसी महामाया शक्तिकी स्तुति कौन कर सकता है! हे देवि! अपने प्रभावसे इन दोनों दुर्धर्ष असुरोंको मोहित कीजिये और इन्हें मारनेके लिये भगवान्को जगाइये।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर वे महामाया भगवती भगवान्के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु तथा हृदयसे बाहर निकलकर प्रत्यक्ष खड़ी हो गयीं। योगनिद्रासे मुक्त होकर भगवान् भी उठे और देखा कि दो भयकंर राक्षस ब्रह्माको खानेके लिये उद्यत हो रहे हैं, तो ब्रह्माकी रक्षाके लिये स्वयं भगवान् उनसे युद्ध करने लगे।

युद्ध करते-करते पाँच हजार वर्ष बीत गये, परंतु वे राक्षस नहीं मरे। तब महामायाने उन राक्षसोंकी बुद्धि मोहित कर दी, जिससे वे अभिमानपूर्वक विष्णुभगवान्से बोले कि हम दोनों तुम्हारे पराक्रमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम कोई वर माँग लो। भगवान् विष्णुने कहा—यदि आप दोनों मुझे वर ही देना चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि आप दोनों मेरे द्वारा मारे जायँ।' मधु-कैटभने 'तथास्तु' कहा और बोले कि 'जहाँ पृथ्वी जलसे ढकी हुई हो, वहाँ हमको नहीं मारना।' अन्तमें भगवान्ने उनके शिरोंको अपनी जंघाओंपर रखकर चक्रसे काट डाला। इस प्रकार देवकार्य सिद्ध करनेके लिये उन सच्चिदानन्दरूपिणी चितिशक्तिने महाकालीका रूप धारण किया, जिनका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डी, मस्तक और शंखको धारण करनेवाली, सम्पूर्ण आभूषणोंसे सुसज्जित, नीलमणिके समान कान्तियुक्त, तीन नेत्र, दश मुख, दश पादवाली महाकालीका मैं ध्यान करता हूँ, जिनकी स्तुति विष्णुभगवान्की योगनिद्रास्थितिमें कमलजन्मा ब्रह्माजीने की थी। [दुर्गासप्तशती]

राजा चक्कवेणके त्यागका प्रभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

राजा चक्कवेणकी कहानी कहीं किसी पुस्तकमें तो मैंने नहीं देखी है; परम्परासे लोकविख्यात है। यह चक्कवेणका इतिहास वास्तविक है या काल्पनिक, मुझको पता नहीं। जो भी कुछ हो, हमें तो इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वह कहानी इस प्रकार है—

एक समय चक्कवेण नामके एक राजा हुए थे। वे बड़े ही धर्मात्मा, सत्यवादी, स्वावलम्बी, अध्यवसायशील, त्यागी, विरक्त, ज्ञानी, भक्त, तेजस्वी, तपस्वी और उच्चकोटिके अनुभवी महापुरुष थे। वे राज्यके द्रव्यको दूषित समझकर उसे स्वयं अपने और अपनी पत्नीके काममें नहीं लाते थे। प्रजासे जो कुछ 'कर' लिया जाता था, वह सारा-का-सारा प्रजाकी ही सेवामें लगा दिया जाता था। राज्यका कार्य वे निरभिमानपूर्वक निष्कामभावसे तन-मनसे किया करते थे। प्रजापर उनका बड़ा प्रभाव था। रामराज्यकी भाँति उनके राज्यमें कोई दुखी नहीं था, सभी सब प्रकारसे सुखी थे।

वे अपने शरीरनिर्वाहके लिये पृथक् खेती किया करते थे। स्वयं रानी बैलके स्थानमें हल खींचा करतीं और वे बीज बोया करते। वे अपने ही खेतमें उपजे हुए अन्नसे अपना भरण-पोषण करते थे। वे गन्ना, रूई, अनाज, फल, और शाककी खेती किया करते थे।

अपने खेतमें उपजी हुई रूईका ही वस्त्र बनाकर पहनते, अपने खेतमें उपजे हुए गन्नोंका ही गुड़ बनाकर खाते और अपने खेतमें उपजे हुए अन्न, फल-शाकको ही भोजनके काममें लाते थे। उनकी पत्नीके पास कोई भी आभूषण नहीं थे; क्योंकि वे राज्यके द्रव्यसे तो आभूषण बनाते नहीं और अपनी की हुई खेतीकी उपजसे केवल सादगीसे खाने-पहननेका कामभर चलता था। खेतीके सिवा उन्हें राज्यके कार्योंमें भी तो समय देना पड़ता था। उनका जीवन एक सीधे-सादे सदाचारी किसानके जैसा था। छ: घण्टे शयनके सिवा उनका सारा समय ईश्वरभक्ति, परोपकार, राज्यकार्य और कृषिके कार्योंमें ही बीतता था। उनका सब जीवोंके प्रति समता, दया और प्रेमका भाव समान था। वे सब प्राणियोंको परमात्माका स्वरूप मानकर सबकी निष्काम प्रेमभावसे सेवा करते थे। वे स्वावलम्बी थे; अपने शरीरका काम स्वयं ही करते थे। किसी राज्यकर्मचारी या नौकर आदिसे नहीं कराते थे। वे जो कुछ भी कार्य करते, आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर बड़े ही उत्साह और धैर्यसे किया करते।

एक दिनकी बात है। जिस देशमें राजा चक्कवेण रहते थे, वहाँ एक बड़ा भारी मेला लगा। उसमें नगरके अन्यान्य प्रान्तोंके लोग बड़ी भारी संख्यामें इकट्ठे हुए। राजा-रानीके दर्शनके लिये यों तो बराबर ही लोग आते रहते, पर मेलेके कारण नर-नारियोंकी भीड़ कुछ अधिक रहती थी। राजाके पास अधिकतर पुरुष आते और रानीके पास अधिकतर स्त्रियाँ आया करती थीं। एक दिन बहुत-से गहनों और रेशमी वस्त्रोंसे सजी-धजी अनेक दासियोंसे घिरी हुई बहुत-सी धनी व्यापारियोंकी स्त्रियाँ रानीका दर्शन करनेके लिये उनके पास आयीं। उन स्त्रियोंने कहा— 'रानीजी! आपके-जैसे वस्त्र तो हमारी मजदूरनियाँ भी नहीं पहनतीं; आप हमारी दासियोंको देखिये, कैसे वस्त्राभूषण पहने हैं। आपके वस्त्राभूषण तो हमलोगोंसे भी बढ़कर होने चाहिये। जैसे ये हमारी दासियाँ हैं, उसी प्रकार हमलोग तो आपकी दासीके समान हैं। आपके स्वामी बड़े सम्राट् हैं, आप उनसे थोड़ा-सा भी संकेत कर देंगी तो वे आपके लिये हमलोगोंसे बढ़कर वस्त्राभूषणकी व्यवस्था कर देंगे। आप हमारी स्वामिनी हैं, इसलिये हमें आपको इस वेशमें देखकर दु:ख होता है। ऐसे वस्त्र तो भीख माँगनेवाली भिखारिन भी पहनना नहीं चाहती। एक सम्राट्की महारानीके जैसे वस्त्राभूषण होने चाहिये, हम उसी रूपमें आपको देखना चाहती हैं।' इस प्रकार कहकर वे अपना प्रभाव डालकर चली गयीं। रानीके चित्तपर उनकी बातोंका बड़ा असर पड़ा।

रात्रिमें जब महाराज आये, तब रानीने सब घटना उनको सुनायी और दिनमें जो कुछ धनी व्यापारियोंकी स्त्रियोंने कहा था, सब राजासे निवेदन किया एवं उनसे अनुरोध किया कि मेरे पहननेके लिये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण मँगा दीजिये। राजाने उत्तर दिया—'कैसे मँगा

दूँ। व्यवहारमें लाना तो दूर रहा, मैं राज्यके पैसोंको छूता भी नहीं, उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।' रानी भी बहुत उच्चकोटिकी पवित्र स्त्री थीं, किंतु वस्त्राभूषणोंसे सजी-धजी धनिकोंकी स्त्रियोंका उनपर काफी असर पड़ चुका था, अतः रानीने कहा—'चाहे जैसे भी हो, आप सम्राट् हैं और मैं आपकी पटरानी हूँ। मेरे लिये तो एक सम्राट्की पटरानीके योग्य बहुमूल्य वस्त्राभूषण मँगानेकी कृपा आपको करनी ही होगी।' पत्नीकी प्रीतिसे प्रेरित राजाने सोचा—'रानी कितना भी आग्रह क्यों न करें, मैं राज्यके द्रव्यको किसी भी हालतमें उपयोगमें ला नहीं सकता, किंतु मैं सम्राट् हूँ; दुष्ट, अत्याचारी और बलवान् राजाओंसे 'कर' ले सकता हूँ।' यह सोचकर उन्होंने पर-राष्ट्रों तथा अधीनस्थ राज्योंके कार्यका सम्पादन करनेवाले मन्त्रीको बुलाया और कहा—'मन्त्री! आप राक्षसराज रावणके पास जाइये और कहिये कि राजा चक्कवेणकी ओरसे मैं आया हूँ, उन्होंने मुझे आपसे 'कर' के रूपमें सवा मन सोना प्राप्त करनेके लिये आपके पास भेजा है।'

सम्राट्की आज्ञा पाकर मन्त्री कुछ आदमियोंको लेकर रथमें बैठकर समुद्रके किनारे पहुँचे और फिर जलयानके द्वारा समुद्रके उस पार पहुँचकर लंकामें प्रवेश किया तथा राजसभामें बड़ी नम्रता और सभ्यताके साथ सम्राट् चक्कवेणका सन्देश सुनाया। सन्देशको सुनते ही रावण हँसा और उसने सभासदोंसे कहा—'देखो, ऐसे मूर्ख राजा भी संसारमें अभी हैं, जो ऋषि, देवता, राक्षस आदि सभीसे 'कर' लेनेवाले मुझ-जैसे बलवान् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महान् सम्राट्से भी करकी आशा रखते हैं, उन्होंने राजा चक्कवेणके दूतको कैद करना चाहा, किंतु सभासदोंके अनुरोध करनेपर उसे छोड़ दिया। वह रावणकी सभासे उठकर समुद्रके किनारे लौट आया।

तदनन्तर रावण जब रात्रिमें मन्दोदरीके पास महलमें गया, तब रावणने हँसकर मन्दोदरीसे विनोद करते हुए कहा—'कोई एक भारतवर्षमें चक्कवेण नामका राजा है। आज उसका एक दूत सभामें आया था और उसने मुझसे सवा मन स्वर्ण 'कर' के रूपमें देनेको कहा। मुझे इसपर बड़ी हँसी आयी। देखो, संसारमें ऐसे मूर्ख भी अभीतक जीते हैं, जो मुझ-जैसे सबसे कर लेनेवालेसे भी कर लेनेकी आशा रखते हैं। मै तो उसके दूतको कैद करना चाहता था, पर सभासदोंके अनुरोधसे उसे छोड़ दिया।' मन्दोदरीने दुःख प्रकट करते हुए कहा—'स्वामिन्! आपने बहुत बुरा किया। चक्कवेणको मैं जानती हूँ, वे सत्यवादी और धर्मात्मा राजा हैं। उनका चक्र चलता है। जो उनकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसका अनिष्ट हो जाता है। उस दूतको सन्तोष कराकर ही आपको उसे भेजना चाहिये था। उसका पता लगाकर अब भी उसको सन्तोष करा दें। नहीं तो, पता नहीं, हमारा कितना अनिष्ट हो जायगा।' रावण बोला—'तू बड़ी डरपोक है, मामूली मनुष्य-राजाओंसे तू इतना भय करती है, मैं इसकी कुछ भी परवा नहीं करता।' रानीने कहा—'कल प्रातःकाल मैं आपको चक्कवेणका प्रभाव दिखलाऊँगी।' प्रातः होते ही राजाके साथ मन्दोदरी महलकी छतपर गयी, जहाँ वह रोज कबूतरोंको अनाज डाला करती थी। अनाज चुगने वहाँ बहुत-से कबूतर आया करते। मन्दोदरीने दाने चुगते हुए पक्षियोंसे कहा—'राजा रावणकी दुहाई है, खबरदार! दाने न चुगना।' किंतु वे चुगते ही रहे। फिर रानीने राजासे कहा—'देखिये, आपकी दुहाई देनेपर भी ये सब दाने चुगते ही रहे।' रावणने कहा—मूर्खे! ये पक्षी बेचारे क्या समझें।' मन्दोदरी बोली—'अब आप राजा चक्कवेणके प्रभावको देखिये।' फिर उसने पक्षियोंसे कहा—'सावधान! चक्कवेणकी दुहाई है, कोई दाने न चुगना।' इतना सुनते ही सब पक्षियोंने एक साथ दाने चुगना बन्द कर दिया। उनमेंसे एक कबूतर बहिरा था, वह कुछ भी सुन नहीं पाता था, अतः उसने दाना उठा लिया। ज्यों ही उसने दाना उठाया, त्यों ही उसकी गर्दन टूटकर गिर गयी। रानीने रावणसे कहा—'देखिये, राजा चक्कवेणकी दुहाईपर सबने दाने चुगने बन्द कर दिये, एक बहिरे कबूतरने न सुननेके कारण दाना उठा लिया, जिससे चक्कवेणके चक्रसे उसका मस्तक कटकर गिर गया।' फिर रानी पक्षियोंसे बोली—'अब मैं चक्कवेणकी दुहाई हटा लेती हूँ, अब दाने चुगो।' तुरंत सब पक्षी दाने चुगने लगे। रानीने फिर कहा—'जो तुम्हारे सम्मुख खड़े हैं, उन राजा रावणकी दुहाई है, कोई भी दाने न चुगना।' किंतु राजा रावणके सामने रहते हुए भी किसीने परवा न की और दाने

चुगते ही रहे। मन्दोदरीने रावणसे कहा—'देखिये, आपको इन पक्षियोंपर कुछ भी असर नहीं होता, परंतु राजा चक्कवेणके प्रभावपर विचार कीजिये, उनके सामने न रहते हुए भी उनका कितना असर है।' रावणने कहा—'मालूम होता है तुम्हारी इसमें कोई चालाकी या माया है। नहीं तो, ये पक्षी बेचारे क्या समझें।' ऐसा कहकर रावण टालमटोल करके राजसभामें चला गया।

इधर, राजा चक्कवेणके मन्त्रीने समुद्रके किनारे एक नकली लंकाकी रचना की। उसने अत्यन्त महीन मिट्टीको समुद्रके जलमें घोलकर रबड़ीकी तरह बना लिया तथा तटकी जगहको चौरस बनाकर उसपर उस मिट्टीसे ठीक लंका-जैसी एक छोटे परिमाणकी आकृति अंकित की। घुली हुई मिट्टीकी बूँदोंको टपका-टपकाकर उसीसे लंकाके परकोटे, बुर्ज और दरवाजों आदिकी रचना की। परकोटेके चारों ओर कँगूरे भी काटे गये एवं उस परकोटेके भीतर लंकाकी राजधानी और नगरके प्रसिद्ध बड़े-बड़े मकानोंको भी छोटे आकारमें रचना करके दिखाया गया। इन सबकी रचना करनेके बाद वह पुनः रावणकी सभामें गया। उसे देखकर रावण चौंक उठा और उससे बोला—'क्यों जी! तुम फिर यहाँ किसलिये आये हो?' उसने कहा—'मैं आपको एक कौतूहल दिखलाना चाहता हूँ। आप मेरे साथ समुद्रतटपर चलिये।' रावण कौतूहल देखनेको उत्सुक हो गया और कुछ सभासदोंको साथ लेकर समुद्रतटपर गया, जहाँ उस मन्त्रीने छोटे नकली लंकाकी रचना की थी।

उसने रावणसे पूछा—'देखिये, यह ठीक-ठीक आपकी लंकाकी नकल है न?' रावणने उसकी अद्भुत कारीगरी देखी और कहा—'ठीक है; क्या यही दिखानेके लिये मुझे यहाँ लाये थे?' मन्त्री बोला—'नहीं-नहीं, इस लंकासे आपको मैं एक कौतूहल दिखाता हूँ। देखिये, लंकाके पूर्वका परकोटा, दरवाजा, बुर्ज और कँगूरे साफ-साफ ज्यों-के-त्यों दीख रहे हैं न?' रावणने कहा—'दीख रहे हैं।' मन्त्रीने कहा—'अपनी रची हुई लंकाके पूर्वद्वारके कँगूरोंको मैं राजा चक्कवेणकी दुहाई देकर गिराता हूँ, इसके साथ ही आप अपनी लंकाके पूर्वद्वारके कँगूरे गिरते हुए देखेंगे।' इतना कहकर मन्त्रीने 'राजा चक्कवेणकी दुहाई है' कहकर अपनी रची लंकाके पूर्वद्वारके कँगूरे गिरा दिये। उनके गिरनेके साथ-साथ ही रावणको असली लंकाके पूर्वद्वारके कँगूरे गिरते हुए दिखायी दिये। यह देखकर रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद दूतने कहा—'अब मैं अपनी रची हुई लंकाके पूर्वके परकोटेके द्वारके आस-पासकी चारों बुर्जें मिटाता हूँ, इसके साथ-साथ ही आप अपनी असली लंकाकी बुर्जोंको मिटती हुई देखेंगे।' यह कहकर उसने चक्कवेणकी दुहाई देकर अपनी बनायी मिट्टीकी लंकाकी बुर्जें मिटा दीं, उसके साथ ही रावणकी असली लंकाके पूर्वद्वारकी बुर्जें भी चकनाचूर होकर नष्ट हो गयीं। यह देखकर रावणको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसे मन्दोदरीकी कही हुई बात याद आ गयी।

तदनन्तर राजा चक्कवेणके मन्त्रीने कहा—''राजन्! आप यदि सवा मन सोना 'कर' के रूपमें नहीं देंगे तो भी राजा चक्कवेणको आपसे युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। राजा चक्कवेणके प्रभावका चक्र चलता है। मैं अकेले ही आपकी लंकाको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये काफी हूँ। अभी राजा चक्कवेणकी दुहाई देकर आपकी लंकाको क्षणमात्रमें एक हाथके झटकेसे नष्ट किये देता हूँ। आप उस लंकाकी रक्षा कर सकें, तो करें। यदि आपको लंकाकी रक्षा करनी है तो 'कर' के रूपमें सवा मन सोना दीजिये; इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।'' रावणने सोचा—'मेरे देखते-देखते क्षणमात्रमें पूर्वद्वारके कँगूरे और चारों बुर्जें गिर गयीं, जो धातुनिर्मित और बहुत ही मजबूत थीं। इसी प्रकार इस सारी लंकाको नष्ट करना इसके बायें हाथका खेल है।' यह सोचकर रावणने सवा मन सोना 'कर' के रूपमें देना स्वीकार कर लिया और मन्त्रीसे कहा—'चलो, मैं आपको सवा मन सोना दे देता हूँ।' तत्पश्चात् उसे सवा मन सोना देकर बिदा किया।

मन्त्री सवा मन सोना लेकर राजा चक्कवेणके पास वापस लौट आया। उसने राजा-रानीके पास जाकर उनके सामने सवा मन सोना रख दिया और कहा—''आपकी आज्ञासे रावणसे 'कर' के रूपमें सवा मन सोना ले आया हूँ।'' राजाके यह पूछनेपर कि तुमने यह सोना कैसे प्राप्त किया?' उसने आद्योपान्त सारी घटना उनको कह सुनायी।

यह घटना सुनकर रानीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने राजासे पूछा—'यह क्या बात है?' राजाने कहा—'हमलोग स्वावलम्बी होकर परिश्रमपूर्वक खेती करके अपना निर्वाह करते हुए वैराग्य और त्यागपूर्वक अपना जीवन बिताते हैं और निष्कामभावसे प्रजाके धनको प्रजाकी सेवामें ही लगा देते हैं, अपने व्यक्तिगत कार्यके लिये राज्यके पैसेको छूतेतक भी नहीं, इसीका यह प्रभाव है।'

यह सुनकर रानीका दिल बदल गया। रानी बोली—'स्वामिन्! मैं बहुमूल्य वस्त्राभूषण नहीं पहनूँगी। जिस प्रकार अबतक नियमसे रहती आयी हूँ, वैसे ही रहूँगी, कुछ भी परिर्वतन नहीं करूँगी। धनी व्यवसायियोंकी स्त्रियोंके कुसंगसे मेरी बुद्धि त्याग, वैराग्य और धर्मसे विचलित हो गयी थी, किंतु अब उनके संगका मुझपर कोई असर नहीं रह गया। मैंने आपसे जो कुछ दुराग्रह किया, उसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थना करती हूँ। मेरे अपराधको आप क्षमा करें और इस स्वर्णको वापस लौटा दें।'

राजाने उसकी बात मानकर मन्त्रीसे कहा कि 'मन्त्री! इसपर जो कुसंगका असर पड़ा था, वह ईश्वरकी कृपासे दूर हो गया है। अब इस धनको जहाँसे तुम लाये थे, वहीं वापस कर दो।' राजाकी आज्ञा होते ही मन्त्री वह स्वर्ण लेकर लंकापति रावणके पास पुनः गया और सभामें जाकर बोला—'महाराज चक्कवेणने आपका यह स्वर्ण वापस लौटा दिया है। उनकी पत्नीकी जो बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहननेकी अभिलाषा हो गयी थी, वह भगवत्कृपासे अब नहीं रही।' अतः अब इसकी उन्हें आवश्यकता नहीं है।'

इस बातको सुनकर रावणके हृदयपर चक्कवेणके त्यागका और भी अधिक असर पड़ा। उसने वह स्वर्ण रखकर मन्त्रीको आदर-सत्कारपूर्वक बिदा किया। मन्त्रीने वापस आकर राजा-रानीको स्वर्ण लौटा देनेका सब हाल सुना दिया। दूतकी बात सुनकर राजा-रानीको बहुत ही प्रसन्नता हुई। राजा चक्कवेणका प्रभाव यक्ष, राक्षस, देवता, मनुष्य, ऋषि, मुनि, पशु, पक्षी आदि सभीपर था।

इस कहानीसे हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। प्रत्येक स्त्री-पुरुषको निष्कामभावसे अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार न्याय और सत्यतापूर्वक अपनी जीविका चलानी चाहिये। दूसरोंके आश्रित होकर अपना जीवन-निर्वाह करना भी अपने लिये घृणास्पद है। झूठ, कपट, बेईमानी करके उपार्जित द्रव्यसे हमें यदि मेवा-मिष्टान्न भी मिल जायँ तो वे हमारे लिये विषके समान हैं, किंतु अपने न्यायोपार्जित पवित्र द्रव्यसे एक मुट्ठी चने भी खानेको मिलें तो वे हमारे लिये अमृतके समान हैं। हमें बीमारी और आपत्तिकालके अतिरिक्त—नौकर-चाकर, स्त्री-पुत्र और शिष्य आदिके रहते हुए भी, अपने शरीरका काम जहाँतक हो सके, स्वयं ही करनेका अभ्यास डालना चाहिये, जिससे कि हमें दूसरोंके अधीन होकर जीना न पड़े। कल्याणकामी पुरुषोंके लिये दूसरोंके आश्रित होकर जीना लज्जास्पद है।

साथ ही, हमें समयको अमूल्य समझकर एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। हर समय भगवान्‌को याद रखते हुए परोपकार और शरीर-निर्वाह आदिका कार्य करते रहना चाहिये। छः घंटे सोनेके अतिरिक्त एक क्षण भी न तो समय व्यर्थ बिताना चाहिये और न उसका दुरुपयोग करना चाहिये। मनुष्यका जीवन बड़ा ही मूल्यवान् है। अतः क्षणमात्र भी उसे निकम्मा नहीं रहना चाहिये, अपनी बुद्धिसे हम जिसको सबसे बढ़कर कार्य समझें, उसी कार्यको करते रहना चाहिये।

थोड़ी देरका कुसंग भी मनुष्यके लिये बहुत हानिकर हो जाता है—इस बातको ध्यानमें रखकर नास्तिक, नीच, प्रमादी, भोगी, पापी, निकम्मे, आलसी दूसरोंपर निर्भर रहकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करनेवाले, खेल-तमाशा और मादक वस्तुओंका सेवन करनेवाले दुर्व्यसनी स्त्री या पुरुषोंका कभी भूलकर क्षणमात्र भी संग नहीं करना चाहिये और प्रमाद, आलस्य, निद्रा, भय, उद्वेग, राग, द्वेष, अहंकार और दुर्व्यसन आदिसे रहित होकर अपना जीवन विवेक, वैराग्य, त्याग और संयमपूर्वक निष्कामभावसे भजन-ध्यान, सत्संग-स्वाध्यायमें ही बिताना चाहिये तथा सम्पूर्ण प्राणिमात्रको परमात्माका स्वरूप समझकर आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर निष्काम भावपूर्वक तन-मनसे सबकी सेवा करनी चाहिये एवं सबपर समान भावसे हेतुरहित दया और प्रेम रखना चाहिये।

भरतका देवपूजन

(श्रीब्रह्मेश भटनागर, एम० ए०)

राजकुमारी जानकीके विवाहोत्सवको होते हुए कई मास बीत गये। समस्त नगर हर्ष और उल्लासके सागरमें आकण्ठ डूबा हुआ बेसुध-सा हो रहा था। अन्तमें पाणिग्रहणका चिर-अभिलषित मांगलिक दिवस आ गया। आजकी शोभा तो अवर्णनीय थी। ऋद्धियों-सिद्धियोंने मैथिलीके आदेशसे कृतकृत्य हो नगरकी साज-सज्जामें चार चाँद लगा दिये। तभी तो मिथिलाका ऐश्वर्य और सौन्दर्य स्वर्गमें ईर्ष्याका विषय बन गया। साधारण-से-साधारण आवासको देखकर सुरराजको अपने भव्य प्रासाद श्रीहीन प्रतीत होने लगे और विवाहमण्डपके निर्माणमें जहाँ श्रीराम-जानकीका विवाह सम्पन्न हो रहा था, मिथिलाके शिल्पकारोंने अपनी कलाका पूर्णतम सफल प्रयोग कर दिया था। साक्षात् सुषमा भी उसकी सुषमापर लजा रही थी।

वर-वधू मण्डपमें विराजमान थे। एक ओर अवधपति समस्त बरातियोंसहित सुशोभित थे और दूसरी ओर मिथिलाधिपति अपने स्वजन बन्धु-बान्धव तथा नगरके गण्यमान्य प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसहित आसीन थे। दोनों नरेश अपनी-अपनी मंगलकामना-लताको पल्लवित-पुष्पित होते देखकर फूले नहीं समा रहे थे। वेदोंकी ऋचाएँ गा-गाकर महर्षिगण पाणिग्रहण-संस्कार करा रहे थे और उस स्निग्ध वातावरणमें माधुर्यका प्रसार करता हुआ गूँज रहा था गाती हुई मैथिली रमणियोंका मधुर कोमल गीत-स्वर।

महलके एक प्रकोष्ठसे आते हुए सुकेशीने कहा, 'चित्रा! आज तो रघुवंशियोंको छकानेकी मैंने एक अपूर्व योजना बनायी है।'

'छकानेकी योजना?' विस्मयसे उसने पूछा।

'अरी हाँ।' और उसने चित्राके कानमें कुछ अस्फुट स्वरमें कहा। वह मुसकरा उठी। 'बड़ा आनन्द आयेगा केशी! जबतक नाक न रगड़वा लेंगी, मानेंगी नहीं।' मृदुलाको आते देखकर सुकेशीने पूछा—'संस्कार सम्पन्न होनेमें कितना विलम्ब है देवि!'

'अधिक नहीं! महर्षिगण स्वस्तिवाचन कर रहे हैं।'

'कोहबरकी व्यवस्था ठीक है न?'

'सब व्यवस्थित है। आप चिन्ता न करें।'

'वर-वधूके आनेके पूर्व हमें सूचना देना न भूलें।'

'अवश्य!' और वह मन्दगतिसे मण्डपकी ओर चली गयी।

'मुझे भय है सुकेशी! इस योजनामें हमें मुँहकी न खानी पड़े।' गम्भीर स्वरसे नन्दाने कहा।

'कैसी बात कह रही है नन्दा! हम उन्हें सरलतासे नहीं छोड़ेंगी!'

'वह साँवला कुमार बड़ा जादूगर है। कलकी ही तो घटना है। चक्रवर्तीजी अपने चारों कुमारों एवं बरातियोंके सहित भोजन कर रहे थे। हास और परिहासका सिन्धु हिलोरें मार रहा था। अट्टहासका तुमुल स्वर वातावरणको कभी-कभी प्रकम्पित कर जाता था। गवाक्षोंमें बैठी नारियाँ अवधेशको मधुर गालियाँ सुना रही थीं और अवधपति उनका रसास्वादन ले-लेकर खिलखिला उठते थे। मेरी वाणी सबसे तीव्र थी। मेरी स्वर-लहरी अजस्र रूपसे फूट रही थी। साँवले कुमार जब अधिक न सह सके तो उन्होंने कनखियोंसे पिताकी दृष्टि बचाकर मेरी ओर देखा। न जाने चित्रा! उस दृष्टिमें क्या था? क्या सम्मोहन था? कैसा आकर्षण था कि मैं सुधबुध भूल गयी और उमंगसे गाने लगी।

'अबकी बार तीव्र अट्टहास बरातियोंमें गूँज उठा और उधर मुझे टोकते हुए रम्भाने कहा, 'क्या गा रही है पगली? क्या अपने महाराजको गाली दे रही है? सुनती नहीं? अवधेशके स्थानपर मिथिलेशको स्वपक्षियोंद्वारा गाली देनेपर ही तो बराती लोग खिलखिला रहे हैं।' और मैं लजाकर भाग गयी।' 'क्या सोचेंगे श्रीमहाराज?'

× × ×

'सूर्यकुलभूषण राजराजेन्द्रकी जय!' जय-घोष गूँज उठा। परिचारिकाने आकर कहा—'देवि! महादेवीका आदेश है कि चारों कुमार वधुओंसहित कोहबरमें पधार

रहे हैं। आप प्रस्तुत हैं न?'

'हाँ!' केशीने कहा।

दासियाँ मार्गप्रदर्शनके लिये पुष्पोंके पाँवड़े बिछाने लगीं और सखियाँ आरतीका थाल लेकर प्रतीक्षा करने लगीं। चारों युगल जोड़ियोंको गीत गाती हुई नारियाँ कोहबरमें ले आयीं। लाल कपड़ोंमें सुसज्जित देवताके समक्ष चारों कुमारोंको बैठा दिया।

राघवेन्द्रकी ओर इंगित करते हुए सुकेशीने कहा—'राघव! पहले कुलदेवताको नतमस्तक हो प्रणाम करो।'

वे देवताका निराला रूप देखकर समझ गये कि देवताकी आड़में मूर्ख बनानेका कार्यक्रम है। किंचित् हास्यसे बोले—'यदि मैं प्रणाम न करूँ तो?'

'तो शेष रीतियाँ स्थगित।'

'और यदि मेरा कोई अनुज इस रीतिको निभा दे?'

'तो कोई आपत्ति नहीं।'

राघवने अनुजकी ओर देखकर कहा—'सौमित्रे! मेरा कार्य तुम्हीं सम्पन्न कर दो।' लक्ष्मण ऊहापोहमें पड़ गये। अवश्य कुछ दालमें काला है। नहीं तो, यह कर्तव्य निभानेका आदेश मुझे न मिलता। सौमित्रिने कुमार शत्रुघ्नकी ओर देखा। 'भैया! मेरा दायित्व तुम्हीं पूरा कर दो।'

छोटे कुमारके समक्ष धर्मसंकट था। अस्वीकार करें तो कैसे? और यदि पालन करते हैं तो कहीं उपहासका भाजन न बनना पड़े। सहसा उन्हें एक युक्ति सूझी। अनुनयके स्वरमें भरतभद्रसे याचना करते हुए कुमारने कहा—'अग्रज! आपके होते हुए यह दायित्व मैं वहन करूँ, उचित नहीं प्रतीत होता।'

भरतलाल तो देवताकी छबिपर मुग्ध हो रहे थे। दायित्व पाकर फूले नहीं समाये।

'तुम चिन्ता न करो कुमार!' अपने स्थानसे उठते हुए उन्होंने कहा। देवताके समक्ष नतमस्तक प्रणामकर वे गद्गद स्वरमें बोले—'मेरे जन्म-जन्मान्तरके देवता! न जाने कितने युगोंसे तुम्हारे दर्शनोंके लिये मेरे नयन तड़प रहे थे। आज इस रूपमें पाकर मैं निहाल हो गया।'

देवताको उठाकर भरतने धीरे-धीरे उन्हें निरावरण किया। देवताके स्थानमें जानकीजीकी चरणपादुकाओंको देखकर सखियोंके समूहमें हास्य मुखरित हो उठा। तीनों कुमारोंके मुखपर मुसकान बिखर गयी। किंतु उधर भरतकी दशा विलक्षण थी। नयनोंसे अश्रुधारा बह रही थी। माँकी पादुकाओंको बार-बार मस्तकपर धर रहे थे। 'माँ!' उनका स्वर उस कोलाहलमें गूँज उठा। 'करुणामयी! मेरा अहोभाग्य है, जो आज तुम्हारी पादुकाओंको मस्तकपर रखनेका सुअवसर इस दासको मिला है। चिरसंचित इच्छा पूर्ण हो गयी। आशीर्वाद दो माँ! इन पावन पादुकाओंका सदा दास बना रहूँ' और खड़े होकर वे नृत्य करने लगे—

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

उधर नृत्य हो रहा था और इधर सखियाँ अपनी योजनाको सम्पूर्ण असफल देखकर लज्जावनत हो रही थीं।

'दूलह राम, सीय दुलही री!'

दूलह राम, सीय दुलही री!
घन-दामिनि बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि सी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु, लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री॥
सुखमा सुरभि सिँगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही, री॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल, न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही, री॥

[गीतावली]

जगत्का स्वरूप

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आज जो लोग जगत्में उत्तरोत्तर उन्नति देख रहे हैं, उनका लक्ष्य सदाचार, सद्भाव तथा सत्कर्म एवं सबके मूल श्रीभगवान्की ओर नहीं है और न वे भगवान्की प्राप्तिको मानव-जीवनका मुख्यतम लक्ष्य ही मानते हैं। उनका लक्ष्य है—भौतिक उन्नति। आज जो तार, बेतारका तार, रेडियो, मोटर, हवाई जहाज, विद्युत्-शक्ति और परमाणु-शक्ति आदिके आविष्कारसे मनुष्यकी शक्ति बढ़ गयी है, उसीको वे उन्नति मानते हैं। अवश्य ही विज्ञानकी उन्नति हुई है, पर उसका प्रयोग किस प्रकार और किस कार्यमें हो रहा है—इसपर विचार करनेसे स्पष्ट पता चलता है कि विज्ञानने जहाँ यातायात, संवादवहन आदिमें सुविधा कर दी है, वहाँ उसने मानव-जगत्के संहारमें भी बहुत बड़ी सहायता की है, परंतु विचार करें तो इसका वास्तविक कारण विज्ञान नहीं है—इसका कारण है मनुष्यकी मानसिक वृत्ति। उसी परमाणुशक्तिसे, यदि जगत्के हितकी इच्छा हृदयमें भरी हो तो, बड़ा हित-साधन हो सकता है। किंतु मनमें द्वेष-द्रोह तथा वैर-विरोध रहनेके कारण उसीके प्रयोगसे लाखों जापानी कुछ ही क्षणोंमें कालके गालमें पहुँच गये और आज भी सारा जगत् उसकी भयानकतासे सशंकित है। इसपर भी सुना यही जाता है कि अमेरिका और रूसके वैज्ञानिक उससे भी अधिक भयानक किसी शक्तिके आविष्कारमें लगे हैं। पता नहीं, इसका कितना भीषण परिणाम होगा!

वस्तुतः उन्नति तभी समझी जाती है, जब मनुष्यका मन केवल दैवी सम्पत्तियोंका ही निवासस्थान बन जाय, सभी सबका सुख तथा कल्याण चाहने लगें। घृणा और द्वेषके बदले प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें आत्मीयता और प्रेम आ जायँ, स्वार्थ और अधिकारकी जगह त्याग और कर्तव्योंको स्थान मिल जाय एवं क्रोध तथा हिंसाकी जगह क्षमा और साधुता ग्रहण कर ले। जिस युगमें ऐसी बातें होती हैं, वही युग उन्नतिका युग माना जाता है, इसीलिये हिंदू-शास्त्र ऐसे युगको सत्ययुग कहते हैं और यह कालचक्रके अनुसार अपने-आप आया करता है। इस समय कलियुगका प्रारम्भ है और शास्त्रोंके अनुसार अवनतिका समय है। सत्ययुगमें जहाँ धर्मके चार पाद होते हैं, वहाँ कलियुगमें केवल एक पाद रह जाता है। सत्ययुगमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति धर्मानुष्ठानकी ओर रहती है और कलियुगमें भोगोंकी ओर रहती है। भोगकामना जब बढ़ जाती है, तब मनुष्य अर्थका आश्रय लेकर पापकर्ममें लग जाता है और परिणामस्वरूप जगत्की अधोगति हो जाती है।

आजका जगत् जिस सभ्यताकी ओर बढ़ रहा है, उसमें असत्य, लूट-पाट, चोरी, व्यभिचार, अनाचार, छल-कपट, व्यक्तिवाद, अधिकारलिप्सा, उच्छृंखलता, द्वेष, द्रोह, पीड़न, शोषण, हिंसा, नृशंसता आदि दुर्भाव और दुराचार द्रुतगतिसे बढ़ रहे हैं और इसको भी उन्नति ही माना जा रहा है। कुछ विचारशील पाश्चात्य विद्वानोंने भी इस सभ्यताका खोखलापन देखा है और वे कहने लगे हैं कि यह मानव-जातिका विनाश करके ही छोड़ेगी। श्रीरोमारोलाँने कहा है कि 'पाश्चात्य सभ्यता एक आग्नेय पर्वतकी गुफाकी बगलमें आ पहुँची है—वह किसी भी क्षण ध्वस्त हो जा सकती है।'

विज्ञानकी उन्नतिने विलास, आरामतलबी, दुराचार, दुर्नीति, निष्ठुरता और हिंसाको बेहद बढ़ा दिया है। मानवकी मानवता ही आज मरणासन्न है। और, जबतक भगवान् तथा धर्मका आश्रय तथा कर्मफलभोगका भय नहीं होगा; तबतक किसी भी वाद-प्रवर्तन, राज्यपरिवर्तन या नवीन पद्धतिके निर्माणसे पतनका यह प्रवाह नहीं रुक सकता। अवश्य ही इस पतनोन्मुखी कलियुगमें भी वे व्यक्ति सुरक्षित रह सकते हैं, जो भगवान् तथा धर्मका आश्रय लेकर अपने किये हुए कर्मोंके फलभोगमें विश्वासी हैं और इसलिये भगवत्प्रीत्यर्थ सत्कर्म ही करते है, परंतु आज जिस गतिसे पतनका यह प्रवाह चल रहा है, उसके देखते तो यही प्रतीत होता है कि अभी जगत्में उच्छृंखलता और स्वेच्छाचारिता बढ़ेगी और सहज ही परिणाममें दुःख भी बढ़ेगा।

इस पतनके प्रवाहको उन्नति समझना तथा बतलाना ही यह सिद्ध करता है कि मनुष्य आज पतनकी उस अवस्थाको पहुँच गया है कि जहाँ उसकी विवेककी आँखें

ही बदल गयी हैं और वह बड़े गर्वके साथ अनिष्टको इष्ट और अधर्मको धर्म बतला रहा है। यही तामसी बुद्धि है, जो समस्त अर्थोंको विपरीत बतलाती है। और—

'जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः'

—इस (उपर्युक्त) भगवद्वाक्यके अनुसार तमोगुणी वृत्तिमें स्थित लोग नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध है कि इस समय जगत् अवनतिकी ओर जा रहा है। उन्नतिकी पहचान है—मानव-मनकी पवित्रता, सुख, शान्ति और साथ ही दैहिक सुख-समृद्धिकी सात्त्विक वृद्धि। अवनतिकी पहचान है—मानव-मनकी अपवित्रता, विषाद, अशान्ति और साथ ही दैहिक दुःख-दैन्यकी तामसी वृद्धि। इस समय जगत्‌में कौन-सी बातें अधिक बढ़ रही हैं, इसे आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

उन्नति या अवनति

उन्नति-अवनतिकी कसौटी चमत्कारपूर्ण भौतिक साधनोंका आविष्कार नहीं है। उसकी सच्ची कसौटी है समष्टिके मनकी उच्चतम स्थिति। यदि समष्टिमें गीतोक्त दैवी-सम्पत्ति बढ़ रही है तो समझना चाहिये, उन्नति हो रही है और आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है तो अवनति हो रही है। भौतिक उन्नतिसे न इसका विरोध है, न मेल। बड़ी-से-बड़ी भौतिक सम्पत्ति बढ़ रही है तो अवनति हो रही है। भौतिक सम्पत्तिके साथ भी दैवी-सम्पत्ति आ सकती है। हमारे प्राचीन युगोंमें भौतिक सम्पत्तिकी पूर्ण प्रचुरता थी, परंतु उसका प्रयोग होता था सात्त्विक-भावापन्न पुरुषोंकी सुबुद्धिके द्वारा वास्तविक जनकल्याणकारी कार्योंमें। आजकी भौतिक सम्पत्ति ऐसी नहीं है। अणुशक्तिका आविष्कार भौतिक उन्नतिका एक अद्भुत उदाहरण है, परंतु मनुष्यकी राक्षसी और आसुरी बुद्धिके कारण उसका प्रथम प्रयोग होता है, क्रूरतापूर्ण विपुल जनसंहारमें। आज बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंके मस्तिष्क आसुरी बुद्धिकी प्रेरणासे इसी नर-संहारके अनुसंधानमें लगे हैं और इसमें बड़े गर्वका अनुभव कर रहे हैं। आसुरी-सम्पत्तिका अवश्यम्भावी परिणाम श्रीभगवान् बतलाते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १६, १९-२०)

'वे अनेक प्रकारकी कामनाओंसे भ्रान्त चित्तवाले, मोहजालमें फँसे हुए और विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति रखनेवाले लोग अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं। उन द्वेष-हृदय, क्रूरकर्मा, पापपरायण नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य [मानव-जीवनके चरम और परम फलरूप] मुझ भगवान्‌को न पाकर कई जन्मोंतक लगातार आसुरी योनियोंको प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी अधिक बहुत नीची अधम गतिको जाते हैं—नरकाग्निमें पचते हैं।'

इससे सहज ही यह सिद्ध है कि जिस अनुपातसे आसुरी-सम्पत्ति बढ़ रही है, उसी अनुपातसे दुःख भी बढ़ेगा। किसी विषयके विचार पहले मनमें आते हैं, फिर वाणीमें और तदनन्तर वैसा कार्य होता है एवं तब उसीके अनुसार फल होता है। आज जगत्‌के अधिकतर लोगोंके मनमें दम्भ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, प्रतिहिंसा, मान, अभिमान, ईर्ष्या और असूया आदिके कुत्सित विचार बड़ी तेजीसे बढ़ रहे हैं एवं तदनुसार चोरी, असत्य, लूट, हिंसा, व्यभिचार आदि असत्-कार्योंकी मात्रा भी बढ़ रही है। इसी अनुपातमें बीजफल-न्यायके अनुसार इनका भयानक परिणाम भी अवश्य होगा। यहाँ भी दुःख बढ़ेंगे और परलोकमें भी दुःखोंकी ज्वाला अधिक धधकेगी।

सांसारिक दुःखोंका कारण और निवारण

सांसारिक दुःख उन्हींको होते हैं, जो यथार्थ सुख नहीं, किंतु दुःखसे भरी स्थितिको ही सुख समझकर उसकी प्राप्तिके लिये धन, मान, सम्पत्ति, कीर्ति आदिकी अपेक्षा करते हैं और इन्हींकी प्राप्तिके लिये यत्न करते हैं। सुखके नहीं वरं मिथ्या सुखाभासके पीछे पागल रहनेवालोंकी यही स्थिति होती है। इसमें कभी और कहीं भी सुख नहीं है; दुःख-ही-दुःख है—

'दुखालयम्', 'असुखम्' है, सदा यह। जो वास्तविक परम सुख है, वह किसी बाहरी नश्वर और परिवर्तनशील

वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखता—इसीलिये धनी-दरिद्र, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष, विद्वान्-मूर्ख, ऊँच-नीच सभी इसके अधिकारी हैं। आवश्यकता है—बाहरी ओरसे मुख मोड़कर अन्तर्मुख होनेकी—उस परम सुखकी ओर देखनेकी—अतुल अनन्त सुख-समुद्र भगवान्‌के सम्मुख होनेकी। जहाँ भगवान्‌के सम्मुख हुआ कि जीवके सारे पाप-ताप, दुःख-क्लेश कटे। ऐसी अवस्थामें संसारिक सुखकी इच्छाके न रहनेपर जो सुख होता है, उसकी तुलना सांसारिक मनोऽभिलषित उच्च-से-उच्च वस्तु-प्राप्तिसे होनेवाले सुखके साथ नहीं की जा सकती। उस भक्तिपरिप्लुत निष्कामभावसे उत्पन्न सुखको सूर्य और इस वस्तुजनित सुखको खद्योत कहें, तब भी तुलना ठीक नहीं होती।

जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नहीं रहता, वैसे ही भक्तिका प्रादुर्भाव होनेपर विषयान्धकार भी नष्ट हो जाता है। फिर विषयोंकी प्राप्तिमें हर्ष नहीं होता, उनके चले जाने या नष्ट हो जानेकी आशंकासे द्वेष नहीं होता। तब मिलने न मिलनेकी या चले जानेकी कोई चिन्ता नहीं होगी और गये हुए या नये विषयोंके लिये कोई आकांक्षा नहीं होगी।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥

(गीता १२।१७)

लोकदृष्टिमें जन्म, उत्सव, धन-प्राप्ति आदि शुभ माने जाते हैं और मृत्यु, धननाश, मान-कीर्तिका नाश आदि अशुभ माने जाते हैं। इन शुभाशुभसे जिसके मनमें किसी प्रकारका भी हर्ष-विषाद, द्वेष या प्राप्तिका मनोरथ नहीं होता, उस शुभाशुभका परित्यागी भक्तिमान् पुरुष भगवान्‌को बड़ा प्रिय है।

इस विवेचनपर आप विचार कीजिये। फिर खोजिये कि दुःखका कारण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है। यह निश्चय मानिये कि भोगोंकी प्राप्तिमें यदि दुःख है तो भोगोंकी प्राप्ति होनेपर भी वह दुःख कभी घटेगा या मिटेगा नहीं—जैसे मलसे धोनेपर मल नहीं मिट सकता। कीचड़से कीचड़ धुलता नहीं, वरं और भी बढ़ता है। अतएव यदि दुःखसे यथार्थ छूटना हो तो भगवान्‌के आदेशका पालन करके उनका भजन कीजिये, एकमात्र यही उपाय है। भगवान्‌ने कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'

'इस अनित्य और सुखरहित लोकको प्राप्त करके (यदि सुख चाहते हो तो) मुझको भजो।' यह जगत्, यह शरीर अनित्य और दुःखरूप तथा मिथ्या है—इसे पाकर भगवान्‌का भजन करना चाहिये। भजन ही जीवनका सार है।

तीन प्रहरका यह जीवन

(श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)

कितने रंगोंमें रँगा हुआ है, तीन प्रहरका यह जीवन।

प्रथम प्रहर आगमन उषाका
बाल सूर्य लेकर आता।
मानव जीवनका प्रथम प्रहर
भी कुछ ऐसा ही है भाता॥
न चिन्ताएँ होतीं मनमें, हँसता गाता चलता जीवन।
किलकारी भर खेल-खिलौनोंमें कट जाता है बचपन॥

जब धूप चटख कुछ हो जाती
नीला अम्बर हँसने लगता।
जीवनमें मस्ती-सी छाती
मायामें मन फँसने लगता॥
उपवन-सी लगती यह दुनिया, भौंरे-सा बन जाता है मन।
कुछ नई-नई चाहें लेकर, धीरेसे आ जाता यौवन॥

पंछी वापस आते घरको
जब सूरज ढलने लगता है।
जीवन-सागरमें आया था
जो ज्वार उतरने लगता है॥
दुनियाके खेलोंसे मानवका, हटने-सा लगता है मन।
तब वृद्धावस्था आ जाती, है अन्त जहाँ होता जीवन॥

प्रथम प्रहरमें ओ मानव
तू मात्र खिलौनोंसे खेला।
प्रहर दूसरा जब आया तब
देखा दुनिया का मेला॥
प्रहर तीसरा जिसमें तेरे, कम्पित कर हैं, शिथिल चरण।
मूरख मानव अब तो कर ले, अपने कर्ताका सुमिरण॥

सचाईका पुरस्कार

(पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०)

संसारके सभी लोग सचाईकी बड़ाई करते हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिलेगा, जो मिथ्या आचरण और दूसरोंको धोखा देनेको भला कहे। पर यह भी एक साधारण अनुभवकी बात है कि विरला ही व्यक्ति पूर्णत: सचाईको अपने व्यवहारमें लाता है। इतना ही नहीं, जो व्यक्ति जितना अधिक दूसरोंसे सच्चे व्यवहारकी आशा करता है, वह उतना ही स्वयं धूर्त होता है। धूर्त व्यक्तिको संसारके सभी लोग छल और कपटसे भरे दिखायी देते हैं। वह अपने कपट-व्यवहारकी ओर दृष्टि नहीं डालता, पर दूसरोंके कपट-व्यवहारसे सदा सतर्क रहता है। ऐसा व्यक्ति जितना भोले-भाले लोगोंकी प्रशंसा करता है, उतना अपने जीवनमें सत्य व्यवहार करनेवाला नहीं देखा जाता।

अब प्रश्न यह आता है कि सच्चे लोग सचाईकी महिमाका बखान करें तो युक्तिसंगत है, झूठे लोग क्यों सचाईकी महिमा गाते हैं, वे लोग क्यों सच्चे लोगोंकी खोजमें रहते हैं? संसारके प्राय: सभी लोग अपने-आप सच्चे न होकर फिर सच्चेपनको क्यों अच्छा कहते हैं, और जब वे एक प्रकारके व्यवहारको अच्छा कहते हैं, तो स्वयं तदनुकूल आचरण क्यों नहीं करते?

प्रश्नके पहले भागका उत्तर यह है कि सच्चे लोग जितनी सरलतासे ठगे जा सकते हैं, उतनी सरलतासे झूठे लोग नहीं ठगे जा सकते। यदि धूर्तोंको सदा उन्हीं-जैसोंसे व्यवहार करना पड़े तो उनकी धूर्तताका महत्त्व कुछ भी न रह जाय। ठगोंको उनकी ठग-विद्यासे तभी लाभ होता है, जब दूसरे लोग ठगोरी करनेको मिलते हैं। ठगोंको भोले-भाले आदमी प्रिय होते हैं और चतुर आदमी उन्हें अप्रिय लगते हैं। जो व्यक्ति उनके नग्नस्वरूपको उन्हींके सामने खड़ा कर दे, उससे बड़ा दुश्मन वे किसी दूसरेको नहीं मानते। हम सचाईकी प्रशंसा आत्मरक्षाकी भावनासे करते हैं। हम दूसरोंसे ठगे नहीं जाना चाहते, अतएव सच्चे लोगोंको भला कहते हैं। पर जब हम सचाईको भला गुण कहते हैं, तब अपने आन्तरिक मनमें हम यह नहीं चाहते कि हम स्वयं सच्चे बनें और सब प्रकार धूर्तता और चतुराईसे अलग रहें।

इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि हमने वास्तवमें सचाईके महत्त्वको नहीं समझा। सचाईसे व्यवहार करनेवाला व्यक्ति प्राय: सांसारिक दृष्टिसे घाटेमें रहता है। अतएव हम मन-ही-मन सचाईको एक प्रकारकी बेवकूफी समझते हैं। विरला ही व्यक्ति सचाईकी मौलिकताको ठीकसे समझा है। इसलिये हमें अपने मनमें अनेक युक्तियोंसे यह बिठलाना आवश्यक है कि वास्तवमें धूर्तता त्याज्य है और सचाई लाभकारी है। बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो व्यक्ति सारे संसारको अनेक प्रकारकी युक्तियोंद्वारा सचाई, कर्तव्य-परायणता और सरलताकी मौलिकताको समझा सकता है, वही इन गुणोंसे वंचित रहता है। सचाईका उपदेश देनेवाले व्यक्ति ही प्राय: बड़े धूर्त होते हैं। जो बात तीक्ष्ण बुद्धिवाला व्यक्ति अनेक तरहसे लोगोंको समझाता है, ठीक उसी बातके प्रतिकूल उसका आचारण होता है। अतएव इस प्रकारके विद्वान्से संसारके लोग धूर्तता ही सीखते हैं न कि सचाई। वास्तवमें ये विद्वान् विद्वान् ही नहीं, ये तो परम मूर्ख हैं। तभी तो महात्मा कबीरने कहा है—

पंडित और मसालची इनकी याही रीति।
औरनको करे चाँदनो आप अँधेरे बीच॥

सचाईका वास्तविक पुरस्कार क्या है—यह जानना एक दिनकी बात नहीं। सच्चे कामका फल अच्छा होता है और झूठेका बुरा। यह सम्पूर्ण जीवनके अनुभवके पश्चात् किसी-किसी व्यक्तिको समझमें आता है। झुठाईसे मनुष्यको तात्कालिक लाभकी सम्भावना रहती है, यदि किसी लड़केने अच्छी तरहसे अपना पाठ याद नहीं किया है और नकल करके परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाता है तो वह नकल करनेके सुअवसरसे लाभ क्यों न उठाये? यदि वह लड़का नकल करनेके मौकेको काममें नहीं लाता तो उसे एक पूरे साल पुरानी कक्षामें

ही ठहरना पड़ता है। ऐसी सचाईसे क्या लाभ, जिससे जीवन बरबाद हो? ऐसे गुड़से क्या लाभ, जो मौतको आमन्त्रित करे? इस प्रकारके विचार मनुष्यको झूठे व्यवहारमें प्रवृत्त करते हैं।

मनुष्य सदा छोटे मार्गको ढूँढ़ा करता है। इसी प्रवृत्तिके कारण वह सचाईके लम्बे रास्तेको छोड़कर मिथ्यात्वमें पड़ता है। इस प्रकारके आचरणसे मनुष्य अन्तमें दुःख भोगता है। इसका विचार उसे नहीं रहता। जब चोर चोरी करे तब यदि वह यह सोचने लग जाय कि उसे प्रत्येक चोरीके लिये कभी-न-कभी दण्ड मिलेगा तो वह कुमार्गगामी ही क्यों बने? मनुष्यको अपने कृत्योंके प्रति सन्निकटके निष्कर्ष ही दिखायी देते हैं, उसे अन्तिम परिणाम दिखायी ही नहीं देता। इसीलिये वह अपनेको लालचसे नहीं रोक पाता।

जिस मनुष्यका हृदय विशुद्ध है, वह प्रत्येक कामके शुभ और अशुभ परिणामको तुरंत देख लेता है। प्रत्येक मनुष्यका स्वभाव दो प्रकारकी प्रवृत्तियोंसे मिलकर बना है—एक उसे स्वार्थपरायण बनाती है और दूसरी उसे परोपकारमें प्रवृत्त करती है। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ समानरूपेण प्रबल हैं। जब मनुष्यकी स्वार्थ-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं, तो वह छल-कपट और धूर्ततासे काम लेता है और जब उसकी मानसिक प्रवृत्ति परोपकारकी ओर जाती है अर्थात् वह परमार्थका चिन्तन करता है तो वह सचाईका मार्ग ग्रहण करता है। जो मनुष्य अपने आपके प्रति सतर्क है, वह जब भी सच्चे मार्गसे विचलित होता है तो वह अपनी त्रुटिको तुरंत समझ जाता है और उसे उस भूलको सुधारे बिना चैन नहीं मिलता। मनुष्य संसारको धोखा भले ही दे दे, वह अपने-आपको धोखा नहीं दे सकता, दुराचारीकी आत्मा उसे सदा कोसती रहती है। यदि दुराचारी मनुष्य अपने दुराचारको नहीं छोड़ता तो धीरे-धीरे वह एक ऐसी स्थितिमें पहुँच जाता है, जहाँसे मुक्त होना असम्भव हो जाता है। उसका एक-न-एक दिन विनाश निश्चित है।

देखा गया है कि झूठे और मक्कार व्यक्तिको झूठे और मक्कार ही साथी खोजने पड़ते हैं। जब उसे ऐसे लोग नहीं मिलते तो वह भले लोगोंकी नीच प्रवृत्तियोंको ही उभाड़ा करता है, जिससे दूसरे लोग उसकी बुराइयोंका संसारमें प्रदर्शन न करें। वह दूसरोंकी बुराइयोंको सहता है, उनमें भी स्वार्थ-बुद्धिका प्रचार करता है, किंतु इस प्रकारका व्यवहार अन्तमें उसको विनाशोन्मुख बना देता है।

यह समझना बड़ा ही कठिन है कि प्रत्येक छल और कपटका कार्य हमें आध्यात्मिक हानि पहुँचाता है। जिस प्रकार चोर सभी लोगोंसे डरता रहता है, उसी तरह मक्कार मनुष्यका मन सदा उद्विग्न रहता है। उसकी धार्मिकताकी ओट उसे आन्तरिक शान्ति नहीं देती। संसारके सभी पदार्थ मनकी शान्तिके लिये हैं। मिथ्याचारीको संसारकी और वस्तुएँ क्यों न मिल जायँ, मनकी शान्ति कदापि नहीं मिलती। उसका हृदय आन्तरिक ज्वालासे सदा सन्तप्त रहता है। जब इस तरह दिन-प्रतिदिनके व्यवहारसे उसका आध्यात्मिक बल नष्ट हो जाता है तो फिर उसका बाह्य जगत्‌में भी पतन हो जाता है। जैसे-जैसे वह ऊँचा चढ़ता है, वैसे ही उसकी तृष्णा भी बढ़ती जाती है। साथ ही उसमें ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष आदिकी दिनोंदिन अधिकता होती जाती है। फिर वे उसके संसारमें पतनके कारण बन जाते हैं।

अस्तु! सचाईका पुरस्कार अदृश्य है। यह ज्ञानकी दृष्टिसे ही जाना जा सकता है। सच्चा मनुष्य प्रायः दूसरोंके द्वारा ठगा जाता है। पर उसे वे मानसिक यन्त्रणाएँ नहीं होतीं, जो ठगनेवाले चतुर व्यक्तिको होती हैं; उसे तस्करकी भाँति सबसे डरते रहना नहीं पड़ता। उसका मन शान्त रहता है। वह शीघ्र ऊँचे पदपर नहीं पहुँचता, पर कालान्तरमें उसका उत्थान अवश्य होता है, जिसे कोई रोक नहीं सकता। धूर्तोंकी उन्नति अस्थायी होती है, सच्चोंकी स्थायी। सच्चा अपनी अवनत-अवस्थामें भी स्वर्गीय सुखका अनुभव करता है, परंतु धूर्त ऊपरसे उन्नत दीखता हुआ भी अन्दर नारकीय यन्त्रणा भोगता है।

साधकोंके प्रति—

[निषिद्धाचरणका त्याग]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रत्येक मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो अपने उद्धारके लिये प्रयत्नशील है, किंतु यदि वह एक बातपर विशेषरूपसे ध्यान दे तो उसका बेड़ा बहुत शीघ्र पार हो सकता है—वह स्वयं जिन-जिन बातों अथवा आचरणोंको बुरा समझता है, यदि उनका त्याग करता चला जाय, बस, उसका उद्धार हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं, किंचिन्मात्र भी शंका नहीं।

मनुष्य जबतक अपने जाननेमें आनेवाले दुर्गुण, दुराचार आदिका त्याग नहीं करता, तबतक वह चाहे कितनी ही बातें बनाता रहे, वास्तविक तत्त्वको प्राप्त नहीं कर सकता। किया हुआ साधन तो निष्फल नहीं जायगा, परंतु जिन दुर्गुण-दुराचारोंको वह बुरा समझता है, उनका त्याग यदि नहीं करेगा तो वर्तमानमें सिद्धि नहीं प्राप्त होगी। शास्त्र, भगवान् और सन्तोंकी बात दूर रही, 'अपने जाननेमें जो असत् है, ठीक नहीं है, उसे आचरणमें नहीं लाऊँगा। बस, इस बातपर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हो जाय तो बेड़ा पार है।

नर जाने सब बात, जान-बूझ अवगुन करे।
क्यूँ चाहत कुशलात कर दीपक कूँए पड़े॥

मन जानता है कि यह ठीक नहीं है, फिर भी उसे करता है। ऐसी स्थितिमें उसीसे पूछा जाय कि क्या तुम्हारा उद्धार होना चाहिये? यदि वह निष्पक्ष हो सरलतापूर्वक कहे तो उसे भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरा उद्धार होना अन्याय है। इसीलिये ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' नामक पुस्तकमें सबसे पहली श्रेणीमें 'निषिद्ध कर्मोका त्याग' लिखा है—चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य-भक्षण, प्रमाद, आलस्य आदि जो भी निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें शरीर, मन, वाणीसे किसी भी प्रकार न करना, किंचिन्मात्र भी न करना—यह प्रथम श्रेणीका त्याग है। फिर जितने दुर्गुण-दुराचार हैं—उनका, नाशवान् आसक्तिका तथा असत् (अपनी जानकारीमें जो असत् है)-का त्याग कर देना चाहिये। लोग बड़े-बड़े साधनोंको काममें लाते हैं, जप, तप, तीर्थादि करते हैं, समाधि लगाते हैं—ये बहुत अच्छे साधन हैं, पर उपर्युक्त त्याग इनसे कम नहीं रहेगा, निर्विकल्प समाधिसे भी कम नहीं रहेगा।

असत्का सर्वथा त्याग होते ही सत्यमें स्वतः ही स्थिति हो जाती है; यदि नहीं होती तो अवश्य कहीं-न-कहीं असत्का संग है, अन्तःकरणमें असत्की आसक्ति है, नाशवान्में आकर्षण है—अन्य कोई कारण नहीं है; क्योंकि सत्य तत्त्व तो सबको स्वतः प्राप्त है। भगवान् कहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**' (गीता १५।७)। '**मम एव अंशः**'— यहाँ '**मम अंशः**' न कहकर '**मम एव अंशः**' कहा गया है। अर्थात् यह जीव मेरा ही शुद्ध अंश है। यह भगवद्वाणी है। भक्तकी वाणी भी इसी बातको दुहराती है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रा०च०मा० ७।११६।१)

उपर्युक्त अर्धालीमें ईश्वरांश जीवके लिये चार विशेषण दिये गये हैं—अविनाशी, चेतन, अमल तथा सहज सुखराशि। केवल नाशवान्के संगसे इसकी दुर्दशा है; नाशवान् भी कैसा? जो हमें नाशवान् दीखता है। इसलिये संकल्प करना चाहिये—'हम जिसको नाशवान् समझते हैं, अब उसके अधीन नहीं होंगे, उसमें आसक्ति नहीं करेंगे, नहीं करेंगे।' इस संकल्पमें महती शक्ति है। जैसे हम यहाँसे मोटरमें बैठकर रात्रिके समय हरिद्वार जा रहे हैं, मोटरकी रोशनी कितनी ही तेज क्यों न कर दी जाय, किंतु यहाँसे हरिद्वार दीखेगा नहीं; परंतु जितना मार्ग दीखे, उतना तय करते चले जायँ तो हरिद्वार पहुँच जायँगे, इसी प्रकार साधक जितना साधन-मार्गमें आगे बढ़ेगा, उतना उसे अग्रिम मार्ग दीख पड़ेगा और जितना दीखे, उतना तय कर लेनेपर उससे आगे और दीखेगा,

अन्तमें आगे बढ़ते-बढ़ते वह सिद्धि प्राप्त कर लेगा।

ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति स्वयं साधकमें विद्यमान हैं। उनकी ओर दृष्टि करा देनेवालेको गुरु, शास्त्र, महात्मा और भगवान् कहते हैं। इनमें सबसे मुख्य भगवान् हैं। वे सदा सबके हृदयमें विराजमान हैं। जिसकी सच्ची लगन होगी, उसे वे हृदय-स्थित प्रभु संकेत देंगे; किसी गुरु या महात्मासे मिला देंगे; कोई ऐसी घटना घटा देंगे, जिसके कारण वह सत्यकी ओर चल पड़ेगा, कोई परिस्थिति ऐसी आ जायगी, जिससे वह सत्य-पथपर चले बिना रह नहीं सकेगा। यह सब काम प्रभुका है। जीवका तो केवल इतना दृढ़ विचार होना चाहिये कि मुझे प्रभुकी ओर ही चलना है। इतनी भी जिम्मेदारी क्यों हो गयी? इसलिये कि यह संसारकी ओर चला है, इसने नाशवान् जड-पदार्थोंका संग्रह किया है, उन्हें आदर दिया है; अतः इनके त्यागकी जिम्मेवारी भी इसी (जीव)-पर है।

असत्‌के त्यागमें कई प्रश्न उठते हैं। यदि असत् (पदार्थों)-का त्याग कर देंगे तो हमारा व्यवहार कैसे होगा, काम कैसे चलेगा, निर्वाह कैसे होगा? यह मुख्य प्रश्न है। पर सज्जनो! निर्वाह आपके उद्योगपर, आपके विचारपर अवलम्बित नहीं है। पातंजलयोग-दर्शनमें कहा गया है—'**तद्विपाको जात्यायुर्भोगः।**' (२।१३) तीन बातें मनुष्यके जन्मके साथ ही उत्पन्न होती हैं— जन्म, आयु और भोग। जिन कर्मोंके फलस्वरूप शरीर मिला है, उन्हींसे आपका सम्बन्ध है। उन्हीं कर्मोंसे आयु, सुख-दुःख, संयोग-वियोग आदि होते हैं; यह सर्वथा पक्की, सच्ची एवं निश्चित बात है। प्रारब्धपर ऐसा विश्वास न हो तो उन प्रभुपर विश्वास करो, जिन्होंने जन्म दिया है, आपके निर्वाहका प्रबन्ध किया है। पैदा तो कर दे और प्रबन्ध न करे, ऐसी भूल सर्वसमर्थ भगवान्‌की ओरसे नहीं हो सकती। जो अपने कर्तव्यसे कभी च्युत नहीं होते, वे भगवान् हैं और यदि कर्तव्यसे च्युत होते हैं तो उन्हें भगवान् कहेगा ही कौन? जो सर्वसुहृद्, सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ हैं, उनके रहते हम ऐसी शंका करें कि हमारा निर्वाह कैसे होगा, यह आस्तिकता नहीं है। आस्तिक-बुद्धिका अवलम्बन लेकर इस प्रकारकी शंका दूर कर देनी चाहिये।

प्रभुपर विश्वास न हो तो कम-से-कम अपने पुरुषार्थपर, उद्योगपर, क्रियाशीलतापर ही विश्वास करें। आपको जो बुद्धि और उद्योग करनेकी शक्ति मिली है, उससे क्या आप अपनी उदरपूर्ति नहीं कर सकेंगे? नीतिकार कहते हैं—'**वयांसि किं न कुर्वन्ति चञ्च्वा स्वोदरपूरणम्।**' क्या पक्षी एक चोंचसे अपनी उदरपूर्ति नहीं करते हैं? करते ही हैं; तो आप अपना निर्वाह क्यों नहीं कर सकेंगे? लाखों वर्ष पूर्व भगवान् श्रीरामके दरबारमें एक सारमेय (कुत्ता) न्यायहेतु उपस्थित हुआ था और अभीतक कुत्तोंका वंश चलता है। उनके न खेती है, न नौकरी; न व्यापार है न दलाली; न अध्यापन है, न वकालत और न कोई अन्य व्यवसाय ही है; फिर भी उनकी उदरपूर्ति होती है। क्या हम इन क्षुद्र पशु-पक्षियोंके समान भी नहीं हैं, जो उदरपूर्ति एवं निर्वाहकी चिन्ताकर असत्‌को अपनायें और पाप-कर्म करें? इस विषयपर थोड़ी आगेकी बात सोचें—यदि आपका काम नहीं चलेगा, रोटी नहीं मिलेगी, कपड़ा नहीं मिलेगा तो क्या होगा? मर जायँगे और क्या होगा? इससे अधिक आपत्ति और क्या आयेगी? अच्छा, यह बतलाइये कि पाप करेंगे तो नहीं मरेंगे? अमर हो जायँगे? कदापि नहीं। मरना तो पड़ेगा ही। फिर आपके जीनेका उपयोग यह हुआ कि आप अधिक-से-अधिक पाप-संग्रह करके मरेंगे, शुद्ध निष्पाप नहीं मरेंगे। क्या यही उद्देश्य है मनुष्यजीवनका?

बस, हो गया, इतना पाप बहुत हुआ। आजसे ही विचार कर लें—'अब अन्याय नहीं करेंगे, पाप नहीं करेंगे, जिस कामको बुरा समझते हैं, उसे नहीं करेंगे।' मर जायँगे तो क्या? दो बार थोड़े ही मरना पड़ेगा? जो जन्मा है, उसे एक बार मरना पड़ेगा ही। यह तो है नहीं कि पाप छोड़नेसे दो बार मरना पड़ेगा। ऐसा दृढ़ विचार कर लिया जाय तो फिर आपको कोई भी डिगा नहीं सकता। आप कह सकते हैं कि हमारे कुटुम्ब है, हमारी जाति है, हमारी प्रतिष्ठा है, वह कैसे रहेगी? विचार करें, ये सब सदा रहेंगी क्या?

वस्तुत: ये सब मिटनेवाली हैं। इनकी इच्छा रखनेसे आपको केवल धोखा होगा, इनके निमित्त किये गये निषिद्ध आचरणोंका पाप लगेगा। नरक अकेले भोगना होगा। यह संसार, परिवार, जाति, प्रतिष्ठा, व्यवहार—कोई भी काम न आयगा। दुर्दशा केवल आपकी होगी।

आज मनुष्य पैसेका गुलाम होकर वेगपूर्वक पतनके गर्तमें जा रहा है? वह रुपयेके लिये न प्रतिष्ठाको देखता है न आपत्तिको। कैदमें जाना पड़े तो भी कोई परवाह नहीं। छल-कपट, जालसाजी, बेईमानी करके किसी प्रकार रुपये कमा लो, बस। आपत्ति या अप्रतिष्ठाकी कोई चिन्ता नहीं। क्या हम आध्यात्मिक उन्नतिके लिये भी इनका त्याग नहीं कर सकते? फिर कैसे जिज्ञासु हैं? कैसे साधक हैं? यह सोचें।

मैं बार-बार दुहराता हूँ—यह पक्का विचार कर लें कि जिन कामोंको हम बुरा समझते हैं, अबसे उन्हें नहीं करेंगे, नहीं करेंगे। कम-से-कम उन्हें क्रियामें तो नहीं ही लायँगे। मनमें खराबी आ भी गयी और हमने उसे कार्यरूपमें परिणत न किया तो वह स्वयं मिट जायगी, बिना उपाय किये ही मिट जायगी। उद्देश्य पक्का हो जानेपर मनकी खराबी टिक नहीं सकती। हमें शास्त्रोंका ज्ञान नहीं है, हम सिद्धान्त नहीं जानते, पढ़े-लिखे नहीं हैं, कोई परवाह नहीं; अपने मनसे जिसे हम पाप समझते हैं, वह नहीं करेंगें, अन्याय नहीं करेंगे। बहुत वर्षोंतक, महीनोंतक, दिनोंतक समझमें न आया, कोई चिन्ता नहीं; अब समझमें आया, अब भी छोड़ देंगे तो बेड़ा पार होनेमें कोई सन्देह नहीं है।

वैदिक आख्यान—

धर्मकार्यमें प्रमाद उचित नहीं

(श्रीअमरनाथजी शुक्ल)

एक बार ऋषि अगस्त्य बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे थे। यज्ञके प्रारम्भमें देवेन्द्र इन्द्रकी स्तुतिकर उनके लिये प्रथम यज्ञ-हवि अर्पित की। पर इन्द्रने सोचा कि यज्ञ तो होते ही रहते हैं, जाकर बादमें हवि ले लेंगे। समयपर आकर हवि स्वीकार करनेकी बजाय प्रमादवश बादके लिये टाल दी। हवि तत्काल स्वीकार करनी चाहिये, पर अति विलम्ब होते देख महर्षि अगस्त्यने वह हवि मरुद्‌गणोंको दे दी।

इन्द्र यज्ञ-स्थलपर देरसे आये। देखा तो उनके लिये अर्पित प्रथम हवि मरुद्गणोंको दी जा चुकी थी। इन्द्र बहुत दुखी हुए, शोकग्रस्त हो गये। उनकी ऐसी दशा देखकर अगस्त्यने कहा—'देवेन्द्र! शोक न करें। यज्ञ तो अभी चल ही रहा है। आपको बादमें हवि मिल जायगी।'

इन्द्रने ऋषिको प्रणामकर व्यथित होकर कहा—ऋषिवर! बादमें मिलजानेका क्या पता। जो अभी मेरे निमित्त अर्पित था, जब वही नहीं मिल पाया तो बादमें मिल जायगा, इसका क्या निश्चय! अनागत भविष्यके गर्भमें क्या है, क्षण-क्षणमें सहस्त्रों विषयोंमें भटकनेवाले मनकी गतिको कोई कैसे जान सकता है?

ऋषि अगस्त्यने कहा—'देवेन्द्र! इतने दुखी मत होओ। मरुद्गण भी आपके देव-भाई हैं। उन्होंने अभी उसे खाया नहीं है। आप उनसे ले लीजिये।'

इन्द्रका विषाद कम नहीं हुआ, बोले—'ऋषिवर! आपका दोष नहीं है। दोष तो मेरा है, जो मैंने जिस कार्यको जिस समय करना चाहिये न करके राज्याभिमानवश प्रमाद किया। जो मेरे प्रति अर्पित था, वह निश्चय ही मेरे लिये नहीं रह गया। जो दूसरेका है, उसे पानेके लिये कौन जाने, कौन रहेगा, कौन देगा, कौन लेगा? इस नश्वर जगत्में प्रतिपल हर साँसके साथ मृत्युके आगमनका उच्छ्‌वास होता रहता है। चिरकालका सोचा हुआ भी संकल्प नष्ट हो जाता है, अचानक सोचे हुएकी तो बिसात ही क्या है? इसलिये मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि जो शुभ कार्य है, जिसके करनेसे धर्म और पुण्यकी उपलब्धि होनेवाली है, उसे क्षणभरके लिये भी न टालें। न जाने कब क्या घट जाय। पहले तो अपना चित्त ही अन्यान्य विषयोंमें भटकते हुए कभी भी आपको उससे विरत कर सकता है, इससे बचे तो मृत्युके पाशसे बचना तो सम्भव ही नहीं, इसलिये ऋषिवर! मुझे इससे तत्त्व-ज्ञान मिला कि धर्म-कर्मका यही गूढ़ रहस्य है कि **'विलम्बं नाचरेद् धर्मे, चलं चित्तं विनश्यति।'** [ऋग्वेद]

'वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ'

(डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा)

'बुलावा' शब्दका जगत्‌में बड़ा विस्तार है। ब्रजभाषामें इसे 'बुलउआ' कहते हैं। सांसारिक बन्धनोंमें बुलउआ कई तरहके हैं, जो अवसरविशेषपर इस आशयसे लगाये जाते हैं कि समाज एकत्र हो, लोग आयें और मनोरथ सफल हो जाय। पर इसके विपरीत इन बन्धनोंसे मुक्त होनेवाला एक बुलउआ और भी है, ***'वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ।'*** वृन्दावनी समाजमें इस बुलावेकी परम्परा बहुत पुरानी है। आज भी यहाँ किसी पुरुष या महिलाके पूर्णायु होनेपर व्यवहारीजनोंके घर मुख्य द्वारपर यह टेर दी जाती है… ***'फलाने नैं वृन्दावनवास पायौ है।'*** अर्थात् वृन्दावनमें निवास करते हुए परलोक-प्रस्थान किया है, फिर इसके बाद कौन-से वृन्दावनका वास? आवश्यकता इस पारम्परिक मर्मको समझनेकी है।

बात कोई एक या दो दिनकी नहीं, यह वृन्दावनमें सैकड़ों सालोंसे पल्लवित उस भावात्मक मान्यताका प्रतिफल है, जिसमें राधा-कृष्णके चिन्तनमें रचे-पगे विरक्त-गृहस्थ साधक यही चाहते हैं कि मैं मृत्युपर्यन्त ब्रज-वृन्दावनमें ही निवास करूँ। ब्रजभाषा साहित्यके इस पक्षकी अपनी विशेषता है। १६वीं सदीमें वृन्दावनी-उपासनाके साधक हरिराम व्यासजीकी वृन्दावनके प्रति चाहना देखिये—

किशोरी मोहि अपनौ करि लीजै।
और दिये कछु भावत नांहि, श्री वृन्दावन दीजै॥
खग मृग पशु पंछी या वन के, चरन सरन रख लीजै।
व्यास स्वामिनी की छवि निरखत महल टहलनि कीजै॥

इस परम्परापर केन्द्रित प्रकाशित साहित्यके साथ ही इसका एक बड़ा पक्ष आज भी पाण्डुलिपियोंके रूपमें निम्बार्क, राधावल्लभ, गौड़ीय हरिदासी, ललित एवं चरणदासी आदि वैष्णव सम्प्रदायोंके साहित्यमें अप्रकाशित ही बना हुआ है, जो वृन्दावनी-उपासनाके इस अनूठे वैशिष्ट्यसे जुड़ा स्वतन्त्र विषय है।

वास्तवमें मृत्युपर्यन्त वृन्दावन-निवाससे जुड़े इस पवित्र भावकी परिणति ही तो थी कि वृन्दावन भक्ति और भक्तोंकी राजधानी बन उठा। ब्रजकी लोकमान्यतामें मोक्षदायिनी मुक्ति भी स्वयंकी मुक्तिके लिये यहाँकी पावन रजको मस्तकपर धारण करने हेतु लालायित दिखती है—

मुक्ति कहै गोपाल सौं मेरी मुक्ति बताय।
ब्रज रज उड़ि मस्तक लगै मुक्ति मुक्त होइ जाय॥

मोक्षप्रदायिनी मुक्ति ही नहीं, स्वयं भक्ति भी वृन्दावनकी पुण्य भूमिपर आकर निहाल हुई थी। श्रीमद्भागवतमें उल्लेख है कि भक्ति द्रविड़में जन्मी, पालन-पोषण कर्नाटकमें हुआ और गुर्जर आदि प्रदेशोंमें कालके प्रवाहसे जर्जर हो चली। यह वृन्दावनकी दिव्यताका प्रभाव ही है कि वृन्दावन-आगमनके साथ ही वह अपने पूर्ण स्वरूपको प्राप्तकर नृत्यरत हुई—**'धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च'** भक्तिका यह नर्तन ही तो यहाँ उपासनाकी विविधताओंको बतानेवाला है। साधकोंके लिये तो यहाँ आज भी युगल-सरकारका नित्य-रास है, तभी तो ये किसी भी कीमतपर इस दिव्य रास-स्थलीको नहीं छोड़ना चाहते। किसी भी परिस्थितिमें वृन्दावनवास न छूटे, यहाँके साधक इसके प्रति सचेष्ट रहते थे। राधावल्लभ-सम्प्रदायके वाणीकार ध्रुवदासजीने कहा भी है—

खण्ड-खण्ड ह्वै जाय तन अंग-अंग सत टूक।
वृन्दावन नहीं छाड़िवौ, छाड़िवौ है बड़ी चूक॥

वृन्दाकी इन निकुंजोंका आकर्षण ही तो था कि १६वीं सदीमें ओरछा-दरबारके राजगुरु हरिराम व्यासजी वृन्दावन आनेको लालायित हो उठे—

हरि कब होंगे वनवासी।
कब मिलिहैं वे सखी-सहेली हरिवंशी-हरिदासी॥

यहाँ प्रिया-प्रियतमका नित्य रास है और नित्य बसंत। शुक-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य श्यामाचरणदासजीने अमर लोक-लीलामें लिखा है—

अखण्ड रास लीला अमर, नित वृंदावन धाम।
नित विहार जँह होत है चरन दास कौ वास॥

वास्तवमें वृन्दावनी-उपासनाके साधक इसी दिव्य वृन्दावनमें निवासके लिये ही यहाँ जीवनभर साधनारत रहकर उस दिनकी प्रतीक्षा करते हैं कि कब इनके युगल-सरकार उन्हें यह सौभाग्य प्रदान करेंगे। यही कारण है कि वृन्दावनकी कुंज गलियोंमें भ्रमण करते समय पग-पगपर उन श्रद्धावान् सन्त-साधकों, रानी-राजमाताओं और राजा-महाराजाओंके समाधि-स्मारक दर्शित होते हैं, जो बस यही चाहते थे कि हम मृत्युपर्यन्त इसी दिव्य वृन्दावनमें रमे रहें। वृन्दावनी-उपासनामें निमग्न साधक तो यही कहते हैं कि उपासनाका यह मार्ग साधारण नहीं—ये सिंहनीके उस दूधकी तरह है, जिसे सिंहका शावक ही पचा सकता है या स्वर्णपात्रमें सुरक्षित रहता है—

ललिता सखी उपासना ज्यौं सिंहनी कौ छीर,
ज्यौं सिंहनी कौ छीर रहे कुंदन के बासन।
कैं बच्चा के पेट और घट करै विनासन . . .।

निकुंज-सेवी श्रीबिट्ठलविपुलजीके निकुंज-प्रवेशका तो उपक्रम ही अद्‌भुत था। वे अपने गुरु स्वामी श्रीहरिदासजीके तिरोभावपर आँखें मूँद बैठ गये कि अब संसार व्यर्थ है। तीन दिवस गुजर गये, पर न तो आँखें खोलीं और न किया अन्न-जलका सेवन। इस परिस्थितिसे उबारनेके लिये, कि कैसे भी ध्यान तो बँटे, गुरु-भाइयोंने 'रासलीला' का आयोजन कराया। इसके बाद तो श्यामा-श्यामने जो लीला दिखायी, वह अद्‌भुत है। रास चल रहा था, सभी साधक बैठे थे, एकाएक श्यामाजूने विट्ठलविपुलजीका हाथ आँखोंके ऊपरसे हटा दिया। उन्होंने रासेश्वरी राधाके दर्शन किये और रासेश्वरी साधकको देखती रहीं, बस, यही क्षण था, सभी स्तब्ध और बिट्ठलविपुल प्रवेश पा गये, निधुवनकी उन निकुंजोंमें जो बिहारीजीके प्राकट्य और श्यामाजूकी अभिसार-स्थली हैं। भक्तोंके लीला-संवरणकी यह बातें भी अद्‌भुत हैं। साधनाका उच्च स्तर और अर्जित पुण्य ही उन्हें यह सामर्थ्य प्रदान करता है—

रास रस रसिकन सभा, मधि रूप राधा कर गह्यौ।
नमि सीस इष्ट निहारि नैंननि, थूल तन तजि भजि लह्यौ॥

वृन्दावनमें राधाबल्लभलालजूके वर्तमान मन्दिरसे पुराने समीपस्थ अकबरकालीन राधावल्लभमन्दिरके निर्माणका उपक्रम बड़ा अनूठा है। भगवतमुदितजीकी पोथी रसिक अनन्यमालमें उल्लेख है कि गोस्वामी हित हरिवंश महाप्रभुके ज्येष्ठपुत्र वनचन्द्रजीके इस कथनसे, कि जो कोई मन्दिरका निर्माण करायेगा, वह एक सालके अन्दर प्रभुके धामको गमन करेगा। इस कारण कई राजे-रजवाड़े मृत्युके भयसे लौट गये। आखिरमें बादशाह अकबरके सेनापति तथा नवरत्नोंमें एक अब्दुल रहीम खानखानाके दीवान सुन्दरदास कायस्थने इस बातको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारा और मन्दिर-निर्माणका बीड़ा उठाया। वनचन्द्रजीकी आज्ञाको शिरोधार्यकर सुन्दरदासने बस यही निवेदन किया कि मैं श्रीजीके वर्षभरके उत्सवोंका आनन्द लेना चाहता हूँ। अतः आप मुझे श्रीजीके सामने ही निवास-स्थान देनेकी कृपा करें—

पाँच आरती सातों भोग। नैमित्तिक उत्सव कौ जोग॥
एक वरष करि कर तुम देखौं। भाग्य सुफल अपने करि लेखौं॥
अरु इक वचन आपु मुख भाखौ। सन्मुख स्थल करि मोहि राखौ॥

सुन्दरदासने श्रीजीके वर्षभरके उत्सवका आनन्द लिया और आखिरमें वह दिन भी आया, जिसकी बात एक वर्ष पूर्वसे तय थी कि नव मन्दिरमें श्रीजूके विराजमान होनेके एक वर्षके अन्दर ही मन्दिर-निर्माता श्रीजीके धामको गमन करेगा—

जब ठाकुर मंदिरहिं पधारै। कर्ता मरै बरस मधि तारैं॥

सुन्दरदास तो आरम्भसे ही इस परमगतिके लिये लालायित थे। समय-चक्रमें एक वर्षकी अवधि कैसे गुजर गयी, पता ही न चला। उस दिन भी सुन्दरदासने प्रतिदिनकी तरह श्रीजीका चरणोदक लिया। मन्दिरमें समाजी हित चतुरासीजीके पद ***'बनी वृषभान नंदिनी आजु'*** का गान कर रहे थे। सुन्दरदास श्रीजीके समक्ष दण्डवत् करते हुए प्रभु-

लीलामें प्रविष्ट हुए—

तब पुनि वह बरस दिन आयौ। नित विहार निजु धाम बुलायौ॥
बनी वृषभानु नंदिनी आज। यह पद गावत सकल समाज॥
हिय जुग ध्यान करत मुख गान। करि दण्डवत तजे निजु प्रान॥

याद आ रहा है महाप्रभु चैतन्यके परम प्रेमी हरिदास ठाकुरका वह हठ कि वृद्धावस्थामें स्वस्थ होते हुए भी महाप्रभुसे कहने लगे—प्रभु! नाम-जपका लक्ष्य पूरा नहीं हो पा रहा है और मैं अब जाना चाहता हूँ; क्योंकि आपका लीला-संवरण देखनेकी शक्ति मुझमें नहीं। प्रभुने समझाया भी अब उम्र बढ़ रही है, लक्ष्यको थोड़ा कम करो, पर हरिदास कहाँ माननेवाले थे? जिद कर बैठे, मेरी परम अभिलाषा है और इसे आपको पूरा करना ही होगा, मैं आपका दर्शन करते हुए लीला-संवरण करना चाहता हूँ। महाप्रभुने फिर समझाया—हरिदास! तुम्हारे बिना मैं कैसे रह पाऊँगा? लेकिन हरिदास ठाकुर तो अड़े थे, कहने लगे—प्रभु! अब और माया न दिखाओ, मुझपर कृपा करो—कीर्तन आरम्भ हुआ, स्वर-लहरियाँ तीव्र होती गयीं, सभी साधक कीर्तनमें निमग्न, इसी दौरान महाप्रभुका भावावेश बढ़ा और वे उच्च स्वरमें कीर्तन करते-करते नृत्य करने लगे। आनन्दसे परिपूर्ण हरिदास ठाकुरने सजल नेत्रोंसे प्रभुको देखते हुए कहा—हे प्रभु! मेरे सामने ही बैठ जाओ और उन्होंने नेत्रोंको स्थिर कर दिया। श्रीकृष्णके मुख-मण्डलपर। बस फिर क्या था! साधक और साध्य एक हो गये।

चैतन्य महाप्रभु, मीरा, कबीर और इसी क्रममें ऐसे महान् साधकोंके लीला-संवरणसे जुड़े प्रसंग भी दिव्य हैं। वृन्दावनके यशोदानन्दन मन्दिर विहार घाटका यह परिक्षेत्र तो उस चतुरानन नागा-जैसे साधककी भजन-स्थली है, जिसका ब्रजयात्राका नियम ही अनूठा था—

श्री गोविन्द देव जू कौ भोर ही दरस करि,
केशव सिंगार राजभोग नंदगाँव में।
गोवर्धन-राधाकुण्ड हैके आवैं वृन्दावन,
मन में हुलास नित करें चार धाम में॥

इस क्रममें जब एक बार कदम्बखण्डीके पास इनकी जटाएँ हींसकी झाड़ियोंमें उलझ गयीं तो नागाजीने किसीका भी सहयोग लेनेसे मना कर दिया और तीन दिनोंतक भूखे-प्यासे खड़े प्रभुके चिन्तनमें बस यही कहते रहे—***जाने उरझाई हैं बोई सुरझायगौ...*** आखिरमें जब ग्वालवेशमें भगवान् आये तो यह कहकर पहचाननेसे ही मना कर दिया कि मेरे प्रभु तो युगल-सरकार हैं। साधककी जिद थी, माननी पड़ी प्रभुको। यशोदानन्दनके बिलकुल बगलमें ही तो है नागाजीकी समाधि, जहाँ महाराजजीकी पूर्ण श्रद्धा थी।

एक समय यशोदानन्दन-मन्दिरके गर्भगृहकी छत जब जीर्ण हो चली तो यहाँ दूलैरामजीकी परवर्ती पीढ़ीके साधक वहीं गर्भगृहके निकट इस भावसे शयन करने लगे—***'अकेले नांय दबन दूँगो, मैं ऊ संग दबूंगौ।'***

वास्तवमें सेवाका संस्कार समझना है तो यशोदानन्दन आना ही होगा। यहाँ प्रभुसे लाड़-दुलारके रूपमें वात्सल्य, सेवाके उपांगोंके रूपमें दर्शित हुआ है। वृन्दावनके विहारघाट परिक्षेत्रमें यह कुंज-उपासना उपासनाके धरातलपर पिछली कई पीढ़ियोंसे सेवामें लाड़-दुलारकी विविधताओंको बताती आयी है। कालान्तरमें वृन्दावन वनसे नगरीय संरचनाकी तरफ बढ़ा। बदलाव समयकी आवश्यकता भले ही रही हो, लेकिन निकुंज-भावसे प्रेरित यहाँके साधकोंने कुंज-संस्कृतिको संरक्षित रखा और लगे रहे इस कुंजमें स्यामा-स्यामको लाड़ लड़ानेमें। उपासनाके इस धरातलको उसी पवित्र दृष्टिसे देखें तो आज भी वह वृन्दावन है, वह भाव भी है और वे साधक भी, जो वृन्दावनको इसी भावसे जीते हैं कि मृत्युके बाद भी हम इन्हीं निकुंजोंमें रमे रहें और रसपान करते रहें युगल-सरकारके नित्य विहारका। तभी तो सब जगमें अनूठा है—***'वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ।'***

रामकथाके अमरत्वका रहस्य

(श्रीसुरेशचन्द्रजी)

गुजरातीके प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर गुनवन्त शाहने एक स्थानपर लिखा है कि भारतीय संस्कृतिकी आत्मा वेद है, उपनिषद् उसका तत्त्व है, भगवद्गीता उसका हृदय है और रामायण एवं महाभारत उसकी आँखें हैं। रामके जीवनपर आधारित वैसे तो अनेक काव्य एवं महाकाव्य लिखे गये हैं, किंतु इनमें दो ही अधिक प्रसिद्ध हैं—प्रथम महर्षि वाल्मीकिकी रामायण एवं दूसरा गोस्वामी तुलसीदासजीका श्रीरामचरितमानस। रामायण अर्थात् रामका अयन। अयनके दो अर्थ हैं गति एवं मार्ग। इस प्रकार रामायण रामके जीवन की गति भी है एवं मार्ग भी। दोनोंको यदि एक ही शब्दमें कहना हो तो कह सकते हैं रामायण अर्थात् रामका गतिपथ। श्रीरामचरितमानसका अर्थ है श्रीरामके कार्यों एवं चरित्रका मानसरोवर।

गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें रामके कार्यकलापों एवं चरित्रका भरपूर वर्णन किया है। वाल्मीकिने रामायणकी रचना देवभाषा संस्कृतमें की है जबकि तुलसीदासने रामचरितमानसको लोकभाषा हिन्दीमें लिखा है। लोकभाषामें रचना करके गोस्वामीजीने रामकथाको घर-घर पहुँचा दिया है।

वाल्मीकि रामायण विश्वका प्रथम महाकाव्य है। इसके समस्त पात्र—यहाँतक कि छोटे-से-छोटे पात्र भी मानव-चरित्रकी किसी-न-किसी विशेषताको उजागर करते हैं, किसी एक मानवीय गुणके प्रतीक हैं। जटायु नि:स्वार्थ बलिदानका प्रतीक है। शबरी अपने इष्टदेव रामके दर्शनोंकी जीवनभर प्रतीक्षा कर सकती है। उर्मिला एक ऐसी पत्नी है, जिसके लिये पतिकी इच्छा ही सर्वोपरि है। कल्पना कीजिये कि क्या मानव-इतिहासमें उर्मिला-जैसी कोई स्त्री हुई होगी, जिसने चौदह वर्षोंतक महलोंमें रहकर वनवासीका जीवन जिया हो; क्योंकि उसके प्रियतमकी ऐसी ही इच्छा थी। विभीषण दुनियाके उन अल्पसंख्यक लोगोंके प्रतिनिधि हैं, जिनमें शत्रुपक्षमें विद्यमान सत्यको स्वीकार करनेका साहस होता है। हमारे लोग पास-पड़ोसमें होनेवाले लड़ाई-झगड़ोंके समय भी अपने पक्षकी भूलपर पर्दा डालने एवं विरोधी पक्षके साथ गाली-गलौच करनेमें ही अपनी सारी शक्ति झोंक देते हैं। विरोधी पक्षके सत्यको समझना और उसका औचित्य बतलाना आसान काम नहीं है। रावण-जैसे शक्तिशाली एवं अहंकारी राजाको रामसे सन्धि करने एवं सीताको लौटा देनेकी सलाह देना विभीषण-जैसे लोग ही कर सकते हैं। लंका नगरी भले ही राक्षसोंसे परिपूर्ण हो, किंतु वहाँ विभीषण-जैसे दुर्लभ चरित्र भी निवास करते थे। मानवताको जीवित रखने एवं धर्मकी रक्षा करनेमें ऐसे लोगोंकी विशिष्ट भूमिका होती है। प्रत्येक युगमें कम या अधिक रूपमें विभीषण प्रकट होते रहते हैं।

राम, लक्ष्मण और भरत ऐसे भाई हैं, जिनमें त्याग करनेकी प्रतिस्पर्धा चल रही है। जहाँ भी प्रतिस्पर्धा होती है, वहाँ हमेशा कुछ प्राप्त करने, छीन लेने अथवा स्वार्थ सिद्ध कर लेनेकी खींच-तान चलती रहती है। मानव-इतिहासमें जब-जब प्रतिस्पर्धा सामने आयी है, तब-तब एक पक्ष जीतता है और दूसरा अपमानित होकर पराजयका मुख देखता है, किंतु इन तीनों भाइयोंमें त्याग करनेकी प्रतिस्पर्धा चल रही है। रामको दशरथद्वारा कैकेयीको दिये गये वचनोंके अनुसार चौदह वर्षका वनवास हो चुका है। यद्यपि दशरथसहित सभीकी इच्छा है कि राम वन न जायँ। लक्ष्मणको वन जानेकी कोई विवशता नहीं है, किंतु रामके मना करनेपर भी वे वनको चल देते हैं। अयोध्यामें रहकर वे समस्त राजवैभवका उपभोग कर सकते थे, किंतु वे केवल रामके स्नेहका वैभव ही चाहते थे। वे रामके अनुज, अनुगामी और अनुरागी थे। रामकी आज्ञाका पालन और उनके स्नेहके अतिरिक्त उनके लिये समस्त वैभव तुच्छ थे।

चित्रकूटमें राम और भरतमें भी ऐसी ही त्यागपूर्ण प्रतिस्पर्धा होती है। मानवजातिके लम्बे इतिहासमें शायद ही कभी त्याग करनेकी ऐसी प्रतिस्पर्धा हुई हो। भरत रामसे चित्रकूटमें आग्रह करते हैं कि या तो राम उनके साथ अयोध्या लौट चलें या वे स्वयं वनमें रहेंगे और राम अयोध्याका राजपाट सँभालें, किंतु राम भरतसे कहते हैं कि भाई! तुम प्रतिज्ञाका पालन करो और मैं पिताकी

आज्ञाका पालन करूँगा। तुम अयोध्या लौटकर अनेक कष्ट सहकर भी प्रजाका पालन करो और मुझे चौदह वर्षके वनवासकी अवधि पूर्ण करने दो। अन्तमें भरत रामकी चरण-पादुका लेकर अयोध्या लौट आये और नगरके बाहर नन्दीग्राममें कुटिया बनाकर चौदह वर्षोंतक वनवासियों-जैसा कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत किया।

रावण-जैसे पात्र हर युगमें होते हैं और आज भी मौजूद हैं। वह प्रकाण्ड पण्डित था और उसके पास एक शक्तिशाली मस्तिष्क भी था, परंतु उसका तमोगुण उसकी बुद्धिकी तुलनामें अधिक ताकतवर था। उसके पास अकूत धन-वैभव था, पर वह विवेकरूपी वैभवसे वंचित था। वह जीवनसे कट चुका था एवं हृदयहीन हो गया था। रावणने बड़ी कठोर तपस्या करके अपरिमित शक्ति प्राप्त की थी, किंतु संवेदनाशून्य होनेके कारण उसके जीवनमें शान्ति एवं सच्चे सुखका अभाव था। अनेक बार बाहरसे समृद्ध लगनेवाले लोग अन्दरसे कंगाल होते हैं एवं समाज जिन्हें सुखी मानता है, वे भीतर-ही-भीतर अशान्तिकी आगमें जल रहे होते हैं। संवेदनायुक्त हृदय हमारे शरीर और मनसे सुन्दर काम कराकर मनुष्यताके दीपकको जलाता है, जबकि हृदयके विकासकी उपेक्षा करनेवाला शक्तिसम्पन्न व्यक्ति हर एक वांछित वस्तुको दूसरेसे छीन लेना चाहता है। अहंकारमें डूबे हुए व्यक्तिको दूसरेकी भावनाओं या कष्टकी कोई परवाह नहीं होती। ऐसे तथाकथित सफल व्यक्तियोंसे पर्यावरण दूषित होता है, परिवार टूटते हैं एवं यहाँतक कि युद्धोंकी नौबत आ जाती है।

वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीदासके रामचरितमानसमें रामके गतिपथ एवं उनके चरित्रका स्वर निरन्तर सुनायी पड़ता है। राम अवतारी पुरुष थे एवं महामानव थे, किंतु तो भी मानव ही तो थे। वे मानव शरीरधारी ऐसे विशेष पुरुष थे, जो दो पैरोंसे चलता है, आहार-विहार करता है, बुद्धिपूर्वक विचार करता है, सुखमें हँसता है, दुःखमें रोता है, दूसरेको प्रेम करने एवं दूसरेका प्रेम पानेकी लालसा रखता है एवं जीवनमें आये विषादमें विवेकपूर्वक निर्णय लेता है। राम मर्यादापुरुषोत्तम थे। वे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धर्मयुक्त मर्यादाओंका पालन करनेवाले नरश्रेष्ठ थे। वे यथासम्भव स्थितप्रज्ञता बनाये रखते थे। प्रात:काल राजतिलक पानेवाले राम रात्रिके समय कैकेयीके कटु एवं मृत्युसदृश वचन सुनकर तनिक भी व्यथित नहीं हुए। उन्होंने कहा, 'माँ! ऐसा ही होगा। मैं महाराजकी प्रतिज्ञाके पालनार्थ जटा और चीर धारण करके अवश्य ही वन चला जाऊँगा।' राम एक आदर्श राजा थे और प्रजाके पालनार्थ सब कुछ करनेको तत्पर थे, किंतु फिर भी रामकी कथा एक मानवीय कथा है एवं इसी कारण इसका प्रभाव इतना जादुई, व्यापक एवं शाश्वत है। महामानव राम चाहे जितने भी महान् हों, किंतु वे हम-जैसे मनुष्यकी पहुँचके बाहर हों, ऐसा नहीं है।

रामायण और महाभारत-जैसे ग्रन्थोंको यदि हम भारतकी जीवन-परम्परासे अलग कर दें तो हमारे पास कुछ नहीं बचेगा। रामायणके सभी पात्र आज भी हमारे बीच एक या दूसरे रूपमें जीवन्त हैं। समाजमें कहीं जटायु तो कहीं कैकेयी भी दिखलायी पड़ जाती है। कहीं सीताके दर्शन होते हैं तो कहीं मन्दोदरीकी सिसकियाँ भी सुनायी पड़ जाती हैं। कहीं अयोध्याका धोबी दिखायी देता है तो अशोकवाटिकामें सीताकी सँभाल करनेवाली त्रिजटा भी दीख जाती है। आज भी जहाँ मर्यादा एवं विवेकको सुशोभित करनेवाला व्यक्ति मिल जाता है, वहाँ सूक्ष्म रूपमें राजा राम उपस्थित रहते हैं। जहाँ बन्धुभाव एवं तपका सम्मिश्रण होता है, वहाँ लक्ष्मण होते ही हैं। जब प्राणशक्ति, शौर्य और विवेकका संगम होता है तो हनुमान्जी अनिवार्यरूपसे उपस्थित होते हैं। मर्यादा-भंग करनेवाला रावण है तो मर्यादामें रहकर जो सत्यका पालन करे, वह राम कहलानेका अधिकारी है।

हजारों वर्षोंके पश्चात् रामकथा आज भी जीवन्त लगती है। युग बदलता है फिर भी न मनुष्य बदलता है एवं न उसके इरादों और भावोंमें परिवर्तन आता है। फलस्वरूप रामकथा भी बासी या 'आउट ऑफ डेट' नहीं होती। रामायण न तो देवताओंका काव्य है और न दानवोंका। वह तो मनुष्यताका महाकाव्य है। वाल्मीकिके राम महामानव हैं, नरश्रेष्ठ हैं। गोस्वामी तुलसीदासने उन्हें लगभग भगवान्का दर्जा दे दिया, किंतु फिर भी हमें लगता है कि हम उनका अनुकरण कर सकते हैं।

रामकथाके अमरत्वका यही रहस्य है।

मानवीय मूल्योंकी शिक्षा

(श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी)

मानवीय मूल्य वे हैं, जो सम्पूर्ण मानवजाति ही नहीं, बल्कि समस्त प्राणिसमुदायकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओंकी सन्तुष्टि करते हैं। मूल्य मानव-जीवनको आदर्श बनानेके प्रयासोंके लिये दीपस्तम्भका कार्य करते हैं। सभ्यता और संस्कृतिका जीवन-मूल्योंसे सम्बन्ध अनुलोम है, जीवन-मूल्य जितने उच्च होंगे, सभ्यता और संस्कृति भी उतनी ही महान् होगी। आज हम अपनी सभ्यता तथा संस्कृतिसे दूर हो गये हैं, कारण हमारे जीवन-मूल्योंका पतन होता जा रहा है।

हमारे पूर्व राष्ट्रपति महामहिम डॉ० कलाम साहबने अपने देशके लोगोंकी स्वच्छन्द वृत्तिपर टिप्पणी करते हुए कहा है कि 'सिंगापुरमें आप अपनी सिगरेटका टुकड़ा सड़कपर नहीं फेंकते। आप शाम पाँचसे आठ बजेके बीच आर्थड रोडपर कार चलानेका तकरीबन साठ रुपये भुगतान करते हैं। आपने सिंगापुरमें अगर पार्किंगमें निर्धारित समयसे ज्यादा गाड़ी खड़ी की है तो टिकिट पंच कराते हैं, लेकिन आप कुछ नहीं कहते हैं, क्यों?'

'दुबईमें आप रमजानके दिनोंमें सार्वजनिक रूपसे कुछ भी खानेका साहस नहीं करते। जेद्दामें बिना सिर ढके बाहर नहीं निकलते। वाशिंगटनमें आप पचपन मील प्रति घण्टासे ऊपर गाड़ी चलानेकी हिमाकत नहीं करते और पलटकर सिपाहीसे यह भी नहीं कहते कि जानता है मैं कौन हूँ, फलाँ हूँ और फलाँ मेरा बाप है। ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डके समुद्री तटोंपर आप खाली नारियल हवामें नहीं उछालते। टोकियोमें आप सड़कोंपर पानकी पीक नहीं थूकते। बोस्टनमें आप जाली योग्यता प्रमाण-पत्र क्यों नहीं खरीदते?'

'आप दूसरे देशोंकी व्यवस्थाका आदर और पालन कर सकते हैं, लेकिन अपनी व्यवस्थाका नहीं। भारतीय धरतीपर कदम रखते ही आप सिगरेटका टुकड़ा जहाँ-तहाँ फेंकते हैं। कागजके पुर्जे उछालते हैं। यदि आप पराये देशमें प्रशंसनीय नागरिक हो सकते हैं तो आप भारतमें ऐसे क्यों नहीं बन सकते? अमीर लोग अपने कुत्तोंको सड़कोंपर घुमाने निकालते हैं और जहाँ-तहाँ गन्दगी बिखेरकर आ जाते हैं। फिर वही लोग सड़कोंपर गन्दगीके लिये प्रशासनपर दोष मढ़ते हैं। क्या वे उम्मीद करते हैं कि वे जब भी बाहर निकलेंगे तो एक अधिकारी झाड़ू लेकर पीछे-पीछे चलेगा?'

परिवार मानवकी प्रथम पाठशाला है। बालक परिवारसे ही संस्कार अर्जित करता है। मेजिनीके अनुसार बालकको प्रथम पाठ माँके चुम्बन और पिताके प्यारसे सीखनेको मिलता है, अतः परिजनोंका पारिवारिक परिवेश बालकको सुसंस्कृत बनानेमें महती भूमिकाका निर्वहन करता है। परिवारमें ही बालकमें दया, ममता, स्नेह, उदारता, क्षमा, प्यार और सेवा-भावनाके भाव अंकुरित होते हैं। अतः परिजनोंका नैतिक चरित्र अनुकरणीय होना आवश्यक है। परिजन ही बालकके लिये नींवके पत्थर हैं, जिसपर बच्चोंका भावी भवन खड़ा होकर स्थिर बनता है। माता-पिताके बाद बालक शिक्षालयोंमें गुरुजनोंके श्रीचरणोंमें उनकी छायातले बैठकर सद्गुण अर्जित करता है, अतः विद्यालयोंमें पाठ्यक्रम और आचरणके माध्यमसे शिक्षकोंको मानवीय मूल्योंकी शिक्षा देनी चाहिये।

विद्यालयी शिक्षाके विभिन्न विषयोंके माध्यमसे बालकोंमें नैतिक गुणोंका आविर्भाव होता है। भाषा-शिक्षणके उद्देश्योंमें अभिरुचि और सद्वृत्तियोंका विकास विशेष महत्त्व रखते हैं। पाठान्तर्गत तथा पाठ्योपरान्त शिक्षणमें सहज ही उद्देश्यनिष्ठ विषय-वस्तुपर आधृत मानवीय मूल्योंका समावेश सम्भव है। प्रेमचन्दजीकी 'ईदगाह' कहानीमें हामिदका मेलेसे दादीके लिये चिमटा खरीदनेकी विचारणा, गुलेरीजीकी 'उसने कहा था' कहानीमें बोधा और लहनासिंहका संवाद, 'हारकी जीत' कहानीमें खड्गसिंह और बाबा भारतीकी बातचीत, कविता-पाठोंमें गुप्तजीकी 'भारत माता' कवितासे 'सुख बढ़ जाता दुःख घट जाता जब वह बँट जाता।' प्रेमचन्दजीकी बूढ़ी काकी, पंच परमेश्वर आदि कहानियाँ बालकोंमें उदारता, दया, करुणा, सेवा-भावना, परोपकार तथा त्याग और बलिदानकी भावनाओंको प्रोत्साहित करती हैं। रामायण, महाभारत तथा लोककथाओं और बोधकथाओंके पात्र बालककी

मानवीय संवेदनाओंको उद्वेलित करते हैं, अतः शिक्षकका दायित्व है कि वह ऐसे प्रसंगोंका शिक्षण-मूल्योंके अभिवर्धनकी दिशामें सफलतापूर्वक उपयोग करे ताकि ज्ञात-अज्ञातमें कथा-प्रसंगोंके पात्रोंसे बालकके चरित्रपर पूरा प्रभाव पड़ सके।

शिक्षण-संस्थाओंमें आयोजित विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रिया-कलापोंद्वारा भी बाल मनको पुष्ट तथा जाग्रत्‌कर उसे दिशा प्रदान की जा सकती है। शैक्षिक भ्रमण, बालमेले, स्काउटिंग, साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका आयोजन भी चरित्र-निर्माणकी दृष्टिसे हितकर होता है। प्रार्थना-सभा, साक्षात्कार आदि कार्यक्रमोंको विशेष प्राथमिकता दी जानी चाहिये। वर्तमान शैक्षिक पाठचर्यामें जीवन-विज्ञान विषय भी सम्मिलित हुआ है, जो नैतिक मूल्योंके उभारनेमें अत्यधिक सहायक है।

प्राचीन कालमें भी बिगड़े हुए राजकुमारोंमें नेतृत्व-क्षमता तथा मानवीय मूल्योंके विकासहेतु विष्णुशर्मा-जैसे शिक्षकोंका सान्निध्य मिला है। नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालयोंमें विदेशी लोग चरित्रका पाठ पढ़नेके लिये आया करते थे। इतिहास इस बातका साक्षी है। समाजमें व्याप्त बुराइयोंके निराकरण तथा शासकों एवं सामाजिकोंके नैतिक उत्थानहेतु चारण, भाट तथा जागाओंकी ओजस्वी वाणीद्वारा जनजागरणका उपक्रम रहा है। रामलीला, हरिश्चन्द्र नाटक तथा कथावाचकोंद्वारा लोक धुनोंके आधारपर जनजीवनमें जागरण पैदा हुआ है।

शिक्षा और चरित्र-निर्माणको बाँटकर नहीं देखा जा सकता है। यदि शिक्षाकी निष्पत्ति चरित्र-निर्माण या व्यक्तित्व-निर्माण नहीं है तो वह सही नहीं है। उसमें कोई-न-कोई त्रुटि है। उस त्रुटिको पूरा करना शिक्षासे जुड़े हुए लोगोंका काम है। विद्यार्थीमें बौद्धिक विकासके साथ-साथ अनुशासन, सहिष्णुता, ईमानदारी, दायित्वबोध, व्यापक दृष्टिकोण और व्यापक चिन्तनका विकास अवश्य होना चाहिये।

एक चित्रकार अथवा मूर्तिकार जानता है कि उसे क्या बनाना है, तभी वह अपने कार्यमें सफल हो पाता है। शिक्षक राष्ट्रमन्दिरके कुशल शिल्पी हैं। शिक्षार्थी अनगढ़ मिट्टीके समान हैं। विद्यालय इनको मजबूत ईंटोंमें ढालनेवाली कार्यशाला है। शिक्षा वह विधा है, जिनसे इनको ढाला और राष्ट्रमन्दिरको गढ़ा जाता है। नैतिकता एवं मानवीय मूल्य ही वह भाग है, जिससे इन कच्ची ईंटोंको मजबूती तथा सौन्दर्य प्राप्त होता है, अन्यथा इसके अभावमें गढ़ाईकी सुन्दरताके बाद भी कच्चापन अवश्यम्भावी है।

मानवीय मूल्योंके अभावमें लूट-खसोट, चोरी, डकैती, आतंक तथा उग्रवादका बोलबाला हो रहा है और भ्रष्टाचार, व्यभिचार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। आज मनुष्य मनुष्यका दुश्मन बन गया है और जनसमुदायमें आपाधापीका बोलबाला हो गया है। मानवीय संवेदनाओंके अभावमें आज प्रकृतिके प्रति भी लोगोंका क्रूर व्यवहार बढ़ता जा रहा है। फलस्वरूप प्रकृति भी रूठ गयी है और मानवमात्र भय, आतंक, पीड़ा एवं दरिद्रताके कगारपर पहुँच गया है।

सामाजिक जीवन बड़ा ही भयावह बनता जा रहा है। दुराचार, भ्रष्टाचार, बेईमानी और क्रूरताका दानव आतंकित कर रहा है। छल, कपट, दुराचार, दुष्टता और अनाचारसे पारस्परिक प्रेम-व्यवहार घटता जा रहा है। अतः पाठ्यक्रमके विभिन्न विषयोंमें ऐसी विषय-सामग्रीका समावेश हो, जो बालकको सुनागरिकताका पाठ पढ़ा सके। ऐसी पाठ्य सामग्रीका अन्त हो जो दूधमें पानीके मिलावटसे लाभवाला ज्ञान बताता है।

पन्ना धाय, कर्मावती, दुर्गावती तथा झाँसीकी रानीके पाठ-प्रसंगोंसे नारीके प्रति आदरका भाव पाठ्य सामग्रीके माध्यमसे विकसित किया जाय, स्वस्थ मनुष्यमें स्वस्थ मस्तिष्कका निवास होता है, अतः योग-प्राणायामको भी अनिवार्यतः शिक्षणमें समाहित किया जाय।

हमारे इतिहास-पुरुष महामानवोंकी जीवन-शैलीसे बालकोंको अवगत कराया जाय। शैक्षिक गतिविधियोंद्वारा अनुशासन, शारीरिक श्रम, सहकारिता तथा भाईचारेकी भावनाको प्रोत्साहित किया जाय। संस्कार-शिविरों तथा व्यक्तित्व-विकासके आयोजन, प्रेरक पुरुषोंके वक्तव्य तथा समूह-भावनाको उद्वेलित करनेवाले आयोजन अधिकाधिक हों, ताकि आजका बालक कलका संस्कारवान् नागरिक बन सके और मानवीय मूल्योंकी स्थापनासे राष्ट्रीय चरित्रका उत्थान हो सके।

भोग—भोग्य या भोक्ता

(श्रीरामदेवसिंहजी शर्मा)

यह सर्वविदित है कि मानव चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ असह्य दुःख सहते-सहते अत्यन्त परेशान हो जाता है, तब श्रीभगवान् जीवपर दयाकर इसे मानव शरीर देते हैं—क्यों? इसलिये कि मानव विचार एवं विवेकके साथ सदाचारका पालनकर मुझे प्राप्त कर ले। भगवत्प्राप्तिके बाद मनुष्यका पुनः जन्म नहीं होता है। पर हमलोग करते क्या हैं? संसारकी चमक-दमकसे भ्रमित हो जाते हैं, ओछे आकर्षणकी भूल-भुलैयामें भटक जाते हैं तथा भ्रमित हो सुख-भोगोंकी कटीली झाड़ियोंमें अटक जाते हैं। संसारमें विषय-भोग बहुत आकर्षक और सुखपूर्ण प्रतीत होता है, परंतु यह वैसे ही है, जैसे मृगतृष्णा। भीषण गर्मीमें बालुका प्यासे मृगको जलकी भाँति प्रतीत होती है और भ्रान्तिके कारण वह उसके पीछे-पीछे दौड़ता है और अन्तमें गिर पड़ता है। ठीक, इसी तरह मनुष्यको विषय-भोगोंमें सुख प्रतीत होता है और वह उन्हें भोगना प्रारम्भ करता है, पर वहाँ तो सुख है ही नहीं, सुखकी भ्रान्ति होनेके कारण वह उन भोगोंमें तल्लीन हो जाता है और समाप्त हो जाता है। महाराज भर्तृहरिने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है। उनका कहना है—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

'हमने भोगोंको नहीं भोगा, भोगोंने ही हमें भोग लिया—समाप्त कर दिया। अरे! इस आशा-पिशाचिनीके ही कारण तो इस जीवनकी सारी दुर्दशा हो गयी, फिर भी इसका पिण्ड हमसे न छूट सका।'

भगवान् आदिशंकराचार्य कहते हैं—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्॥

अंग गल गये, बाल सफेद हो गये, शरीर हिलने लगा, दाँत गिर गये, वृद्ध होनेपर डण्डेका ही आश्रय रह गया। फिर भी आशाने पिण्ड न छोड़ा।

भर्तृहरिजीने आगे और कहा है—

अजानन् दाहार्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने
न मीनोऽपि ज्ञात्वा वडिशयुतमश्नाति पिशितम्।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा॥

'पतिंगा इस बातको नहीं जानता कि जलनेपर कैसी पीड़ा होती है, इसीलिये वह प्रचण्ड ज्वालामें कूद पड़ता है। मछलीको भी बंसीमें लगा हुआ मांसका टुकड़ा खाते समय पता नहीं रहता कि उसके भीतर लोहेका काँटा है, परंतु हम लोग तो यह जानते हुए भी कि विषय-भोग विपत्तिके जालमें फँसानेवाले हैं, उन्हें नहीं छोड़ पाते। अहो! कितना बड़ा और घना मोह—अज्ञान है।'

संसारकी असारता एवं निस्सारताको सिद्ध करनेके लिये किसी महापुरुषने स्पष्ट किया है—

जन्म दुःखं जरा दुःखं जाया दुःखं पुनः पुनः।
अन्तकाले महादुःखं तस्माज्जागृहि जागृहि॥
यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुञ्चति पापाचरणं।

अब विचारणीय है कि मानव-जीवनकी ऐसी दुर्दशावस्थासे जीवको छुटकारा कैसे मिले तथा मानव जीवनके दिव्य लक्ष्यको कैसे प्राप्त करे? एक वाक्यमें इसका उपाय है—वैराग्यरूपी शस्त्रसे ही इस मोहकी जड़ काटी जा सकती है। संसारसे वैराग्य और श्रीभगवान्से राग यानी संसारसे विरक्त होकर श्रीभगवान्की शरणागति, अटूट श्रद्धा और दृढ़ विश्वाससे पूर्ण समर्पण—यही एकमात्र उपाय है। एकमात्र इसी साधनसे भगवान्की प्राप्ति हो सकती है और मनुष्य जन्म-मरणके चक्करसे तथा चौरासी लाख योनियोंमें भटकते रहनेसे मुक्त हो सकता है तथा भगवद्धाममें सदा-सदाके लिये प्रवेश कर सकता है।

कलियुगके लिये एक और अति सरल साधन गोस्वामी तुलसीदासजीने बताया है—*'कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥'*

संस्कृति और स्वेच्छाचार

(श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री, शास्त्रार्थपंचानन)

वेदादि शास्त्रोंद्वारा निर्दिष्ट आचार-विचारोंका ही समष्टि नाम भारतीय संस्कृति है। हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—इस दुविधाका निराकरण हम अपने शास्त्रोंद्वारा ही करते आये हैं, आगे भी करते रहें, यही हमारे लिये श्रेयस्कर है। इस सन्दर्भमें गीताशास्त्रमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

अर्थात् क्या करना उचित है अथवा क्या अनुचित है—इसे व्यवस्थितरूपसे जाननेके लिये शास्त्रको ही प्रमाण मानना चाहिये; क्योंकि शास्त्रविहित कर्म करना ही हमारे लिये उचित है।

इस सुस्पष्ट शास्त्रीय निर्देशके बाद भी यदि हम स्वेच्छाचारी होकर अपने सांस्कृतिक मूल्योंकी अवहेलना करते हैं अथवा उन्हें मनमाने ढंगसे विकृत करते हैं, तो यह दुष्प्रवृत्ति नितान्त चिन्ताजनक है। आधुनिकताके व्यामोहमें पड़कर धर्म और संस्कृतिको प्रगतिमें बाधक मानते हुए उनसे पिण्ड छुड़ाकर उच्छृंखल होनेका जो दूषित वातावरण आजकल बनता जा रहा है, उससे सनातन धर्मानुयायी हिन्दू समाज भी प्रभावित होने लगा है। अपने पूजनीय देवी-देवताओं, अवतारों किं वा महापुरुषोंको बाजारू वस्तुओंके विज्ञापनके रूपमें प्रयोग करना एक सामान्य बात मान ली गयी है, जिसके परिणामस्वरूप गोपाल जर्दा, तुलसी जर्दा, हनुमान बम, नारदछाप तम्बाकू आदि न जाने कितने प्रोडक्ट धड़ल्लेसे बाजारमें बिक रहे हैं। प्रयोगके बाद उनपर लगे चित्र कूड़ेदानमें डाले जाते हैं अथवा लोगोंके पैरोंकी ठोकरें खाते हैं।

यह कुचक्र यहीं नहीं रुका है। अब वेदबीज ओंकार और गायत्रीमन्त्रके दुरुपयोगका दौर प्रारम्भ हुआ है। ओंकार एवं गायत्रीमन्त्रकी महत्ताको जानते हुए भी अधिकांश लोग शास्त्रीय व्यवस्थाकी ओरसे आँखें मूँदकर मनमाने आचरणमें प्रवृत्त होते जा रहे हैं।

बृहन्नारदीयोपनिषद्में 'ओम्' के अ, उ, म्—इन तीन अक्षरोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवका रूप माना गया है। गीतामें इसे एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है—'**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।**' और यह बाह्यान्तर शुद्धिके अनन्तर ध्यान करनेसे आध्यात्मिक ऊर्जाका अक्षय स्रोत बन जाता है। जैसाकि कहा भी गया है—'**ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।**' इस विवेचनसे स्पष्ट है कि ओंकार ध्यानकी वस्तु है, न कि सामूहिक रूपसे जहाँ-तहाँ उच्चारण करने या करवानेकी, परंतु आजकल ओंकारके सामूहिक उच्चारणका रोग अपने चरमपर है।

वर्तमान समयमें सर्वाधिक दुर्दशा गायत्रीमन्त्रकी हो रही है। हारमोनियम, तबला, ढोलक, मंजीरा, चिमटे आदिके साथ गा-गाकर इसे ग्राम्य गीत-जैसा बना दिया गया है। इतना ही नहीं, कैसेटद्वारा और मोबाइलकी रिंग टोनके रूपमें धड़ल्लेसे इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। शोक-सभाओंका समापन भी इसी मन्त्रके सामूहिक उच्चारणसे करनेकी परम्परा प्रचलित हो गयी है।

गायत्रीमन्त्रके साथ किया जानेवाला यह अभद्रतापूर्ण व्यवहार निन्दनीय इसलिये हो गया है; क्योंकि ऐसा करना शास्त्रसम्मत नहीं है। शास्त्रोंमें गायत्रीमन्त्रके जप करनेकी महत्ता और उसका पुण्य तो विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किया गया है, परंतु उसका वाद्ययन्त्रोंद्वारा सार्वजनिक गायन तथा जोरसे बोलकर कीर्तन करनेका निषेध है—यह व्यक्तिके लिये कल्याणकारी नहीं है।

गायत्रीमन्त्रके माध्यमसे सविता देवताके जिस भर्ग (तेज)-का हम अपनेमें आधान करना चाहते हैं, वह हमें बाह्यान्तर शुद्धिपूर्वक, संकल्पादि करके अंगन्यास-करन्यास एवं विनियोगपूर्वक जप करनेसे ही प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस सन्दर्भमें स्मृतियोंके निम्नांकित वचन मननीय हैं—

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।

(संवर्तस्मृति २२०)

अर्थात् गायत्रीसे परे पापियोंकी शुद्धि नहीं है।

गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम्॥

(शंखस्मृति १२। १७)

अर्थात् सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली गायत्रीका जप करें।

स्वेच्छाचार संस्कृतिके स्वरूपको शनैः-शनैः विकृत कर देता है। अतः सभी आस्तिक महानुभावोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने आचरणमें शास्त्रानुमोदित कर्मोंको ही प्रश्रय दें। दृढ़तापूर्वक स्वेच्छाचारसे बचनेका प्रयास करें।

मानसमें वर्णित उत्कृष्ट श्रीराम-प्रेमी

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)

सम्पूर्ण योनियोंमें एक मानव योनि ही ऐसी है, जिसमें परमात्मासे प्रेम किया जा सकता है। परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न ही शास्त्र-श्रवणसे प्राप्त किया जा सकता है, अपितु जिसको वह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और वे स्वीकार भी उसीको करते हैं, जिसमें उनको पानेकी उत्कण्ठा होती है, जो उनके प्रेमके लिये व्याकुल रहता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुः स्वाम्॥

(कठोपनिषद् १। २। २३)

श्रीरामचरितमानसके अन्तर्गत वन्दना-प्रकरणमें गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसे पात्रोंकी वन्दना की है, जिनका श्रीरामके प्रति प्रेम अतुलनीय है। जैसे—

(१) श्रीदशरथजीमें 'सत्य प्रेम'

प्रेमी भक्तोंमें महाराज दशरथका दर्जा सर्वोच्च है। सच्चा प्रेम वही है कि प्रियके वियोगमें हृदयमें ऐसी विरहाग्नि प्रज्वलित हो कि उससे मरण अथवा मरणासन्न दशा प्राप्त हो जाय। ऐसा सच्चा प्रेम सर्पका मणिसे और मछलीका जलसे होता है। इनके वियोगमें ये अपने प्राण त्याग देते हैं—

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥

पूर्वजन्ममें मनुके रूपमें घोर तपस्या करके दशरथजीने प्रभुसे यही वरदान माँगा था। अत: श्रीरामके विरहमें उन्होंने अपने तनका तृणवत् त्यागकर अपने प्रेमकी सत्यता सिद्ध कर दी।

महाराज दशरथने प्रेम और कर्तव्यपालनका भरपूर निर्वाह किया। वे सत्यसंध एवं दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने कैकेयीको दिये वचनका निर्वाह तो किया, परंतु राम-वियोगमें अपने प्राण त्यागकर अपने 'सत्य प्रेम'को चरितार्थ किया तथा अपने जीवन-मरणका फल पाया।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने 'सत्य'के साथ 'प्रेम'का प्रयोग केवल महाराज दशरथके साथ ही किया है। तभी तो वन्दना-प्रसंगमें वे कहते हैं—

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥

(२) श्रीजनकजीमें 'गूढ़ प्रेम'

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने वन्दना-प्रसंगमें कहा कि विदेहराज श्रीजनकजीका श्रीराम-चरणोंमें गूढ़ प्रेम था। जब मुनि विश्वामित्रजीके साथ श्रीरामजी श्रीलक्ष्मणजीके साथ जनकपुर पहुँचे तो उनका दर्शन प्राप्त होते ही श्रीजनकजीका योग और भोगरूपी सम्पुटमें छिपाकर रखा हुआ श्रीरामप्रेमरूपी रत्न एकदम प्रकट हो गया।

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

श्रीराम और श्रीलक्ष्मणजीकी मनोहर और मधुर रूपमाधुरीको देखते ही श्रीविदेह वास्तवमें विदेह हो गये। उनको अपनी सुध-बुध भूल गयी। निर्गुण-निराकारवादी जनकजीको श्रीरामके सगुणरूपको देखकर दिव्य आनन्दकी अनुभूति हुई। मानो उनका ज्ञानगत विदेहत्व भक्तिकी भावनाके द्वारा साकार होकर व्यवहारमें परिणत हो गया।

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिरागेउ॥

(श्रीजानकी-मंगल ४१)

वे विवश होकर बार-बार श्रीरामको देखने लगे, उनका मन पुलकित हो उठा और उनके हृदयमें अधिक उत्साह बढ़ने लगा—

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥

श्रीरामके दर्शन प्राप्त होनेपर प्रगट हुए 'गूढ़ प्रेम' का सागर उमड़ पड़ा। यद्यपि विदेहराजकी बुद्धि सांसारिक मोह-ममतामें नहीं डूबी थी, पर श्रीसीतारामरूप सगुण ब्रह्मके गूढ़स्नेहकी यह महिमा थी।

(३) श्रीभरतजीका 'अगम प्रेम'

गोस्वामी तुलसीदासजी भाइयोंमें प्रथम भरतजीकी वन्दना करते हैं; क्योंकि इनसे बढ़कर कोई प्रेमी नहीं। वास्तवमें भरतजीका आदर्श भ्रातृ-प्रेम अगम एवं विश्वके इतिहासमें एक ही है। उनका स्वार्थ-त्याग, संयम, व्रत आदि सभी सराहनीय और अनुकरणीय है।

महाराज दशरथकी अन्तिम क्रियासे निवृत्त होनेके पश्चात् अयोध्याके सभा-भवनमें गुरु वसिष्ठ, मन्त्रियों और कौसल्या अम्बाद्वारा भरतजीको राज्य पद स्वीकार करनेका आग्रह किया गया। भरत ही वे प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने धर्म और कर्तव्यकी जड़मूर्तिमें भावनाकी प्राण-प्रतिष्ठाकी आवश्यकताको समझा। राज्यको स्वीकार न करते हुए उन्होंने करुणाभरे शब्दोंमें प्रार्थना की—

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

त्रिवेणीके सामने रघुवंशकुलोत्पन्न भरतजी दाता होते हुए भी भिक्षुक बनकर स्तुति करते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

ऐसा प्रेमी जो स्वयं प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप है, 'प्रेम' माँग रहा है—

सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि रामसखा निषादराजने जिस समय भरतजीको कामदगिरि पर्वत दिखाया, जिसके निकट पयस्विनी नदीके तटपर श्रीसीताजीसहित श्रीरामजी और लक्ष्मणजी निवास करते हैं, ऐसा जानकर भरतजीमें जैसा प्रेम उस समय हुआ, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते और मुझ कविको तो वह ऐसा अगम है; जैसा अहंता, ममतासे मलिन मनुष्यको ब्रह्मानन्द—

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥

(रा०च०मा० २। २२५)

चित्रकूटमें श्रीराम प्रेमसे अधीर होकर उठे और चरणोंमें पड़े श्रीभरतजीको बलपूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लिया। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम और भरतकी प्रीति कैसे बखानी जाय? वह तो कवि-समुदायके लिये कर्म-मन-वचन तीनों प्रकारसे अगम्य है। भरतजी और श्रीरामका प्रेम 'अगम' है, जहाँ बुद्धिके देवता विधि, चितके विष्णु और अहंकारके महेशका मन नहीं जा सकता, तब इनके मनकी पहुँच भरतजीके प्रेमतक कैसे हो सकती है? उस प्रेमको मैं दुर्बुद्धि किस प्रकार कहूँ?

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥

श्रीभरतजी नित्य प्रति प्रभुकी चरण-पादुकाओंका पूजन करते हैं और आज्ञा माँग-माँगकर बहुत तरहसे राज्यका काम करते हैं। स्वामी श्रीराम उदासी वेषमें वनमें रहकर कष्ट सह रहे हैं तो भरतजी नन्दिग्राममें तपस्वियोंकी तरह रहते हैं। भरतजीके रामप्रेममय आचरणपर तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीसीताराम-प्रेमामृतसे परिपूर्ण श्रीभरतका यदि जन्म न होता तो मुनियोंके मनके लिये भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतोंका आचरण कौन करता? अर्थात् कोई नहीं।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥

स्वयं प्रभु श्रीरामने कहा कि हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही समस्त पाप, प्रपंच और सम्पूर्ण अमंगल-समूह मिट जायँगे, लोकमें सुयश और परलोकमें सुख प्राप्त होगा।

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥

सारा संसार तो रामजीको जपता है, पर रामजी जिनको जपते हैं, उन भरतजीके सदृश श्रीरामजीका कौन प्रेमी है? अर्थात् कोई नहीं।

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(४) श्रीलक्ष्मणजीका 'अनन्य प्रेम'

गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिको निर्मल पताका और लक्ष्मणजीके यशको दण्ड कहा है। पताका और दण्ड दोनों साथ ही रहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके यशको भक्तोंके सामने प्रकाश करनेवाले हैं, जिससे भक्तोंका हृदय शीतल हो जाता है—

बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

लक्ष्मणजी श्रीरामके ऐसे सच्चे और उत्कृष्ट प्रेमी थे कि नाममात्रको भी श्रीरामका अपमान या अपराध किसीके द्वारा क्षणमात्र भी सहन नहीं कर सकते थे। जनकजीद्वारा धनुष-यज्ञमें श्रीरामके उपस्थित होनेपर भी ***'बीर बिहीन मही मैं जानी'*** कहनेपर वे उस अपमानको न सह सके और उन्होंने उनको भी खरी-खोटी सुना दी। परशुरामने रामजीका अपमान किया तो उन्होंने उन्हें भी वहीं आड़े हाथों लिया।

लक्ष्मणजी श्रीरामके वियोगको सहन नहीं कर सकते थे। जब उन्हें श्रीरामके वनवासका समाचार मिला, तब वे व्याकुल हो उठे और उन्होंने दौड़कर श्रीरामके चरण पकड़ लिये, अत्यन्त प्रेमसे वे अधीर हो गये—

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥

गोस्वामीजीने यहाँ लक्ष्मणजीके अंगोंकी व्याकुलता और प्रेमकी दशा कही है। एक ही समय कम्प, पुलक आदि इतने भाव प्रकट होना लक्ष्मणजीके प्रेमको अनुपम एवं असाधारण सूचित करता है।

धर्मधुरीण श्रीरामके धर्मोपदेशको अस्वीकार करते हुए तथा कीर्ति, सद्गति और ऐश्वर्यको न चाहनेको प्रस्तुत श्रीलक्ष्मणजी सर्वत्यागी हो श्रीरामके साथ वन जाना चाहते हैं। लक्ष्मणजीकी निष्ठा और मनोभावका ध्यान रखते हुए श्रीरामने उन्हें वन साथ ले जानेकी स्वीकृति प्रदान कर दी। यह लक्ष्मणजीका श्रीरामके प्रति अनन्य प्रेम ही है।

चित्रकूटकी पावन स्थलीमें विराजमान प्रभु श्रीराम, श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीको कोल-किरातोंद्वारा सूचना प्राप्त हुई कि श्रीभरत चतुरंगिणी सेनासहित आ रहे हैं। प्रभु श्रीरामने सोचा कि श्रीभरत उनसे लौटने तथा अयोध्याका राज्य लेनेका अनुरोध करेंगे। एक ओर सत्यकी मर्यादा तथा दूसरी ओर भरतके स्नेहमें किसका साथ दें, यह चिन्ता उन्हें व्याकुल बना रही थी। लक्ष्मणजीको प्रतीत हुआ कि भरतसे संघर्षकी आशंका श्रीरामको व्यथित बना रही है। सुमित्रा अम्बाने वनगमनके समय लक्ष्मणको आदेश दिया था कि प्रभु श्रीराम एवं जानकीजीकी सेवा ही उनके जीवनका लक्ष्य है। अत: लक्ष्मणजी यह सोचकर कि भरतजी अपने राज्यको अकण्टक बनानेहेतु श्रीरामको रास्तेसे हटानेके लिये आ रहे हैं—ऐसी स्थितिमें थोड़ेसे सन्देहके कारण भरतजीको, अपने सगे भाई शत्रुघ्नको तथा सारी सेनाको मार डालनेके लिये वे प्रभु श्रीरामसे आज्ञा माँगते हैं।

लक्ष्मणजीका इस अवसरपर विलक्षण क्रोध उनकी रामभक्ति एवं प्रेमकी भावनाके सर्वथा अनुकूल है, लेकिन उसी समय देववाणी होती है कि बिना सोचे-समझे शीघ्र ही कुछ निश्चय करना ठीक नहीं है। देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये और श्रीरामजी तथा सीताजीने उनका आदरपूर्वक सम्मान किया और समझाया कि जो कुछ लक्ष्मणने सोचा है, वह सत्य नहीं है।

ये सब बातें केवल अनन्य प्रेम और अनन्य स्वामिभक्तिके लक्षण हैं। ये सब कार्य लक्ष्मणजीने श्रीरामजीकी सेवा और उनके सुखके लिये किये।

लक्ष्मणजीने अपने जीवनको अपना समझा ही नहीं। श्रीरामके अतिरिक्त किसीको सम्बन्धी नहीं जाना। उनका वचन था—

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

(५) श्रीहनुमान्‌जीमें 'निर्भर प्रेम'

हनुमान्‌जीको प्रभु श्रीरामसे केवल 'निर्भर प्रेम' चाहिये। निर्भर प्रेम अर्थात् एकनिष्ठ भगवत्प्राप्ति। उन्होंने अपनी सभी इच्छाएँ प्रभुभक्तिके पुनीत प्रवाहमें अर्पण कर दी थीं। दोहावलीमें तुलसीदासजी लिखते हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

अर्थात् चतुर लोग उसी शरीरका आदर करते हैं, जिस शरीरसे श्रीराममें प्रेम होता है। इस प्रेमके कारण ही हनुमान्‌जीने अपने रुद्रदेहको त्यागकर वानरका शरीर धारण किया है।

अशोक-वाटिकामें रावणद्वारा सीताजीको धमकाकर जानेके पश्चात् अवसर देखकर हनुमान्‌जीने सीताजीके सम्मुख रामनाम-अंकित मुद्रिका डाल दी और श्रीराम-चन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करने लगे, जिनको सुनते ही सीताजीका दु:ख भाग गया। फिर हनुमान्‌जीने सीताजीका विश्वास प्राप्तकर उनको श्रीरामका सन्देश सुनाया।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

प्रभुके दिये गये सन्देशको हनुमान्‌जीके मुखसे सुनकर जानकीजी विह्वल हो गयीं और उनके शरीरकी सुध-बुध जाती रही।

हनुमान्‌जीने जानकीजीको कई बार 'माँ' कहकर बात की, लेकिन दूसरी ओरसे 'पुत्र' सम्बोधन सुननेको नहीं मिला। अत: इस अवसरपर उन्हें लगा कि सम्भव है सन्देशसे प्रसन्न होकर माँ इस सम्बन्धकी स्वीकृति प्रदान करें और अन्तमें निकले हुए एक वाक्यने उनकी आकांक्षा पूरी कर दी। जानकीजीको धैर्य बँधाते हुए उन्होंने कहा कि 'माँ! आप कुछ दिनोंतक धैर्य धारण कीजिये, बन्दरोंके साथ स्वयं प्रभु यहाँ पधारेंगे और आपको छुड़ा ले जायँगे।'

यह दावा सुनते ही वात्सल्यभरे स्वरमें जानकीजीने प्रश्न किया—पुत्र, क्या सारे बन्दर तुम्हारे ही समान हैं? राक्षस तो बड़े ही योद्धा और शक्तिशाली हैं।

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥

तब हनुमान्‌जीने अपना पर्वताकार शरीर प्रकट किया तो सीताजीको संतोष हुआ। माँके औदार्यका कोष पुत्रके लिये खुल गया और उन्होंने आशीर्वाद लुटाने प्रारम्भ कर दिये—'पुत्र! तुम बल और शीलके निधान हो जाओ। हे पुत्र! तुम अजर, अमर और गुणोंके खजाने होओ।'

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥

माँको लगा इन वरदानोंको पाकर भी हनुमान्‌जीके मुखपर प्रसन्नताका कोई चिह्न दिखायी नहीं देता और उन्होंने वह अनोखा आशीर्वाद दिया, जिसे पाकर पवननन्दनने कृतकृत्यताका अनुभव किया।

'करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥'

'तुमसे रघुनायक बहुत छोह करें।' जब प्रभु प्रेमका निर्वाह करें, तब भक्तका निश्चिन्त और निर्भय होना स्वाभाविक है। यह आशीर्वाद प्राप्त करनेके पश्चात् हनुमान्‌जीके अन्त:करणमें जिस वृत्तिका उदय हुआ, गोस्वामीजी उसे 'निर्भर प्रेम' अथवा 'निर्भरा भक्ति' कहते हैं।

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

और जब हनुमान्‌जी लंकासे लौटते हैं तो श्रीरामजी भी उन्हें पुत्र कहकर सम्बोधित करते हैं।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

वाल्मीकिजीद्वारा प्रभु श्रीरामको जो कहा गया कि—

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥

—उसे श्रीहनुमान्‌जी अपने चरित्रमें पूरी तरह चरितार्थ करते हैं। भक्तोंमें अग्रणी श्रीहनुमान्‌जी केवल शरीरसे स्वर्ण पर्वतकी भाँति नहीं हैं, उनका अन्त:करण भी विशुद्ध स्वर्णका ही साक्षात् रूप है। वे सकलगुणनिधान हैं। उनके अन्त:करणमें एक श्यामता अवश्य विद्यमान है और वह

है, प्रभु श्रीरामकी दिव्य श्यामता। जिस श्यामतापर कोटि-कोटि उज्ज्वलता न्यौछावर की जा सकती है।

गोस्वामीजी उनकी वन्दना इन शब्दोंमें करते हैं—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

(६) श्रीविभीषणमें 'चरणप्रेम'

विभीषणजी रावण और कुम्भकर्णके भाई थे। शत्रुपक्षमें रहते हुए भी उनकी श्रीरामके चरणोंमें अनन्य भक्ति थी। रावण और कुम्भकर्णके साथ विभीषणने भी घोर तप किया। साधनाके चरम परिणामस्वरूप इन तीनोंको वर देनेके लिये शंकरजी और ब्रह्माजी आते हैं और यहीं उनका स्वभावगत भेद सामने आता है। रावण रजोगुणी और कुम्भकर्ण तमोगुणी इच्छाओंकी पूर्तिको जीवनका लक्ष्य बना लेते हैं, परंतु विभीषण अपने सात्त्विक ध्येयकी पूर्तिकी कामना करते हैं। विभीषणने ब्रह्माजीसे भगवान्‌के चरणकमलोंमें निष्काम और अनन्य प्रेम माँगा—

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥

रावणद्वारा सीताजीका हरण तथा हनुमान्‌जीद्वारा लंका-दहनके पश्चात् विभीषणने सभामें रावणके दोषोंकी निन्दा की तथा भगवान् रामकी प्रशंसा की। वे रावणसे बोले—'श्रीरघुनाथजी शरणागतके दुःखको नष्ट करनेवाले हैं। हे नाथ! प्रभुको वैदेहीको वापस दे दीजिये और बिना कारण ही स्नेह करनेवाले श्रीरघुनाथजीको भजिये।' लेकिन रावणने क्रोधित होकर विभीषणपर चरण-प्रहार किया और लंकासे निकल जानेको कहा। विभीषणजीने यह कहते हुए लंका त्याग दी कि तेरी सभा कालके वश है और मैं अब श्रीरघुवीरकी शरण जाता हूँ, मुझे अब दोष न देना, परंतु आपका भला श्रीरामजीको भजनेमें ही है।

विभीषणजी हर्षपूर्वक और मनमें बहुत मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले। विभीषणने श्रीरामके चरणोंका प्रताप सूचित किया कि इन चरणोंका स्पर्श पाकर अहल्या तर गयी तो मैं भी तर जाऊँगा। जैसे दण्डकवन शापवश अपावन था और श्रीरामके चरण-स्पर्शसे पावन हो गया, वैसे ही निशाचर वंशमें उत्पन्न होनेके कारण मैं अपावन हो गया हूँ, सो आज चरण-स्पर्श करके पावन हो जाऊँगा। जिन चरणोंको श्रीजानकीजीने हृदयमें धारण कर रखा है, जो कपट-मृगके पीछे उसे पकड़ने दौड़े; जो चरण-कमल शिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें निवास करते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हींको आज मैं देखूँगा।

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥

जिन चरणोंकी पादुकाओंमें भरतजीने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणोंको जाकर इन नेत्रोंसे देखूँगा।

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए विभीषणजी समुद्र पारकर श्रीरामके सम्मुख आकर उनके चरणोंमें गिर जाते हैं और शरणागति निवेदन करते हैं—'मैं कानोंसे आपका सुन्दर यश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भवभयके भंजन करनेवाले और समर्थ हैं। हे रघुवीरजी! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।'

भगवान् श्रीराम भी उनके प्रेममें पुलकित होकर विभीषणको लंकेश सम्बोधन करके परिवारसहित कुशल-समाचार बतानेको कहते हैं।

विभीषणजी कहते हैं—हे श्रीरामजी! आपके चरणारविन्दके दर्शनकर अब मैं कुशलसे हूँ, मेरे भारी भय मिट गये।

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥

शरणमें आये विभीषणको श्रीरामने लंकाका अचल राज्य और अपनी अविरल भक्ति दे दी। [**क्रमशः**]

संत-चरित—

संत नागा निरंकारी

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

संतों और महात्माओंकी महिमाका बखान करना बड़े सौभाग्य और महान् पुण्यकी बात है। संत नागा निरंकारी परम अवधूत थे। उन्होंने लोक-लोकान्तरोंके रहस्यको जन्म-जन्मान्तरसे समझा था। प्रत्येक लोकमें अपनी महती साधना-शक्तिके द्वारा वे आ-जा सकते थे। नागा निरंकारीके अनुयायियोंकी यह मान्यता है कि वे महाभारतकालीन दिव्य-जन्मधारी कर्णके अवतार थे। महाभारतके बाद उन्होंने अनेक जन्म लिये, पर सदा निवृत्ति-मार्गमें ही रहे। उन्होंने कभी विषय-भोगमें रहकर प्रवृत्तिपरायणताका परिचय नहीं दिया। नागा निरंकारीके वेषमें शरीर धारण करनेका समय विक्रमीय सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दीमें पड़ सकता है। उनकी आयु लगभग तीन सौ सालकी रही होगी और महान् आश्चर्य तो यह है कि उनके शरीरमें विकृति—परिवर्तनका दर्शन नहीं हुआ। वे परम हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ, न जाने, कितने समयसे समान आकार-प्रकारमें दीख पड़ते-से चले आ रहे थे। उनकी प्रसिद्ध रचना 'ब्रह्मवाणी' से पता चलता है कि जिस समय मुगलोंका शासन उत्कर्षपर था, उस समय वे सिद्धावस्था प्राप्तकर आत्मानुभूतिके राज्यमें विचरते हुए लोककल्याणमें लीन थे। ऐसा लगता है कि उन्होंने दस सिख पातशाहों—नानकोंमेंसे किन्हींको देखा था। गुरु गोविन्दसिंहके बाद गुरु-परम्पराका अन्त हो गया, वे अन्तिम नानक थे। ऐसी स्थितिमें यह स्पष्ट हो जाता है कि संत नागा निरंकारी या तो उनके पहले जन्म ले चुके थे या उनके समकालीन थे। 'ब्रह्मवाणी' में उनका पद है—

भज ले (श्री) नागा निरवान रे, दीवाने मन।

× × × ×

गुरु नानक करते फेरी, रे दीवाने मन॥

इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित है कि उनके तपका प्रारम्भिक काल पंजाबमें ही बीता। उन्होंने विक्रमीय बीसवीं शतीके अन्तमें समाधि ली; ऐसी स्थितिमें इतनी लम्बी आयुमें तपके प्रारम्भिक कालमें किन्हीं नानकको फेरी लगाते देखना उनके लिये सहज सम्भव है। संत नागा निरंकारी नाम-रूपके आवरणसे परे सत्स्वरूपस्थ महात्मा थे। वे अपने इस जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंमें हरनामदास, रामदास, नागा, नागा गिरिधारी, नागा बाबा और नागा निरंकारी आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुए।

लगभग ढाई-तीन सौ साल पहले पंजाब प्रान्तमें रावी नदीके तटपर अठीलपुर नगरमें, जिसका इस समय पता नहीं चलता, एक समृद्ध राजपरिवार था। उस राज्यकी रानी संतानहीन थीं। एक बार राजप्रासादमें एक संतका आगमन हुआ। संतने रानीको आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हें एक पुत्र पैदा होगा, पर स्मरण रहे कि उसके सिरपर छूरा न फिरे, नहीं तो वह घरको छोड़कर वैराग्य ग्रहण कर लेगा।' कुछ समयके बाद संतके आशीर्वादरूपमें अठीलपुरके राजप्रासादमें नागा निरंकारीका जन्म हुआ। नवजात शिशुका जन्मोत्सव धूमधामसे मनाया गया। बचपनमें नागा निरंकारीका शरीर अत्यन्त छोटा था। उनके पिता और पितामहको बड़ी चिन्ता हुई कि इतने छोटे शरीरवाले राजकुमारसे किस प्रकार राजकार्य-सम्पादन होगा। माँने संतोष किया कि यही क्या कम

है कि उसकी संतान जीवित रहे। माँने अपने पतिसे कहा कि 'यदि मेरे बालकमें राजकार्य चलानेकी क्षमता नहीं होगी तो फकीरी करनेकी शक्ति तो रहेगी ही।'

नागा निरंकारीका पालन-पोषण बड़ी समृद्धि और सुखभोगके वातावरणमें हुआ। वे ज्यों-ज्यों बड़े हो रहे थे, त्यों-त्यों जन्म-जन्मके पुण्य और दानके फलस्वरूप प्राप्त उनकी गम्भीरता और दैवी सम्पत्तिमें भी अभिवृद्धि हो रही थी। राजप्रासादके पीछे एक रमणीय सरोवर था। उन्होंने अपनी शैशवावस्थाके अनेक क्षण उसी सरोवरके तटपर गम्भीर चिन्तनमें बैठकर बिताये। कभी-कभी वे बालमण्डलीमें बैठकर क्रीड़ा करते थे। माँ उन्हें बहुत मानती थीं—पिताकी अपेक्षा उनका स्नेह अपनी प्यारी संतानपर अधिक था। माता उन्हें बहुमूल्य आभूषणोंसे सजाकर बाहर खेलनेके लिये भेजा करती थीं। एक बार वे कीमती हीरेकी अँगूठी पहनकर राजप्रासादके बाहर खेलने जा रहे थे। दैवयोगसे उन्होंने एक भिक्षुकको देखा। दयासे उनके मनमें दानशीलताका भाव जाग उठा, उन्होंने बिना माँगे ही अपनी अँगुलीकी अँगूठी उतारकर भिक्षुकको दे दी। इसी प्रकार एक कीमती शाल खेलके समयमें ही वे कहीं बाहर भूल आये। सांसारिक पदार्थोंमें उनकी तनिक भी आसक्ति या रुचि नहीं थी।

नागा निरंकारी जब केवल दस-बारह सालके ही थे, पंजाबपर यवनोंका भीषण आक्रमण हुआ। उनके पिताको शत्रुओंसे लड़ने रणमें जाना पड़ा। वे युद्ध-क्षेत्रमें मारे गये। कुल-परम्पराके अनुसार नागा निरंकारीकी माँ सती हो गयीं। उन्होंने पिता और माताके स्वर्ग पधारनेपर राजप्रासादका त्याग कर दिया। वे एक संतके आश्रममें पहुँच गये। तेजस्वी बालरूपमें उनको देखकर संत बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका नाम हरनामदास रखा। संत किसी ओषधिके प्रयोगसे चाँदी बनाकर अपने शिष्योंकी तथा अपनी जीविका चलाते थे। नागा निरंकारी इस कार्यसे बहुत दूर रहकर बालक्रीड़ामें मग्न रहते थे। कुछ दिनोंके बाद संतके आश्रमका परित्यागकर वे तप करनेके लिये निकल पड़े।

वे बाल अवधूतके रूपमें निर्जन स्थानोंमें निवासकर तप करने लगे। वे तपके पहले बारह सालकी अवधिमें मौन रहे। नंग-धड़ंग दिगम्बर वेषमें भ्रमण करते देखकर लोगोंने उनको 'नागा बाबा' की संज्ञासे विभूषित किया। वे बालकोंके साथ ही खेलते रहते थे। बारह सालके बाद मौन-व्रत भंग करनेपर उन्होंने वाणी-प्रतिध्वनि-व्रतका आचरण किया। उनसे मिलनेपर या उन्हें देखकर जो व्यक्ति जैसा वचन बोलता था, नागा निरंकारी उसे वैसा ही दोहरा दिया करते थे—चाहे वह प्रिय होता या अप्रिय होता। इस प्रकारके तपमें उनके जीवनके अनेक साल बीत गये। वे अनेक स्थानोंमें भ्रमणकर तप करते रहे। बालकोंके साथ खेलना ही उनकी साधनाका स्वरूप था। इस प्रकारकी साधनाके निगूढ़ भावका अनुभव उनकी कृपासे ही सम्भव है। बालक खेलते-खेलते उन्हें जिस स्थानपर छोड़कर चले जाते थे, वे वहीं तबतक बैठे रहते, या खड़े रहते, जबतक साथमें खेलनेवाले बालक उनका हाथ पकड़कर दूसरे स्थानपर न ले जाते। उन्हें भूख-प्यासकी तनिक भी चिन्ता नहीं रहती थी। यदि कोई खिला-पिला देता तो खा-पी लेते थे। इस प्रकार घोर तपमें उनके जीवनका अधिकाधिक समय बीतने लगा। वे पूरी अवधूत-वृत्तिमें थे।

संत नागा निरंकारीने अनेक प्रान्तोंमें भ्रमणकर तप किया, पर सदा वे गुप्तरूपसे ही विचरते रहते थे। उनके तपोमय जीवनका अधिकांश प्रयाग और कानपुरके बीचके जनपदोंमें बीता। उत्तर प्रदेशके फतेहपुर जनपदमें असोथर नामक उपनगरीके निकटवर्ती वनमें उन्होंने घोर तप किया। इसके पहले अयोध्यामें तप करते उन्होंने अपने जीवनका आधा भाग बिताया था। असोथर एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है, इतिहासप्रसिद्ध भगवन्तरायकी पूर्वकालमें यह नगरी राजधानी थी। यह स्थान महाभारतप्रसिद्ध अमर अश्वत्थामाके नामसे भी सम्बद्ध है। नगरीसे थोड़ी दूरपर अश्वत्थामाके मठका ध्वंसावशेष अवस्थित है। मठसे लगी हुई एक अत्यन्त प्राचीन और निर्जन कन्दरामें संत नागा निरंकारी तप करने लगे। फतेहपुर जनपदके प्रसिद्ध संत मगनानन्द स्वामीने भविष्यवाणी की थी कि 'मेरे ब्रह्मलीन होनेके बाद ही दो पंजाब-प्रान्तीय महात्मा आकर यहाँ तप करेंगे, वे परम सम्मान्य संत हैं।' उनकी भविष्यवाणीकी पूर्तिके

रूपमें ही नागा निरंकारीका आगमन हुआ। उनके साथ एक और संत भी आये थे, कुछ समयतक गंगातटपर निवास करनेके बाद वे समाधिस्थ हो गये। नागा निरंकारी मौन-व्रत ग्रहणकर असोथरवाली कन्दरामें तप करते रहे। परम सौभाग्यका उदय होनेपर व्यक्तिविशेषको उनका दर्शन हो जाया करता था। धीरे-धीरे निकटवर्ती नगरोंमें उनकी कीर्ति फैलने लगी। वे नागा बाबा असोथरके नामसे प्रसिद्ध हो गये। तत्कालीन राजरानी उनके चरणोंमें असाधारण श्रद्धा रखती थीं। उनमें दीर्घकालीन तपके परिणामस्वरूप वाक्योक्तिका फिर आरम्भ हो रहा था, पर वाक्यज्ञान नहीं था। यदि कोई कहता था, 'बाबाजी, बैठो' तो वे भी कह पड़ते थे, 'बाबाजी, बैठो'। लोग उन्हें अपने-अपने घर ले जाने लगे तथा श्रद्धापूर्वक उनकी चरणधूलिसे अपने घरोंको पवित्र कराने लगे। साथमें खेलनेवाले बालकोंकी मण्डली रहती थी। असोथर-निवासकालमें एक बार वे विचरण कर रहे थे। संयोगसे एक थानेदारसे उनकी भेंट हो गयी। थानेदारने पूछा—'आप इस तरह नंगे क्यों घूमते हैं?' नागा बाबाने उसकी बात दुहरायी, 'आप इस तरह नंगे क्यों घूमते हैं।' थानेदारने कहा, 'ठीक तरह जवाब दीजिये।' बाबाने कहा, 'ठीक तरह जवाब दीजिये।' इसी समय कुछ लोगोंने थानेदारसे निवेदन किया, 'ये संत पुरुष हैं, इन्हें छेड़ना नहीं चाहिये।' नागा बाबाको थानेदारने प्रणाम किया और वह चला गया। इसी तरह असोथरके थानेदारको उनके पागल होनेका भ्रम हो गया था। उसने बिना सोचे-समझे बाबाको अस्थायी कारागारमें डाल दिया। रातको नागा बाबाने जोर-जोरसे 'अलख' शब्दका उच्चारण किया। रानी साहिबा उनकी आवाज पहचानती थीं। उन्होंने थानेदारको कड़ी धमकी दी और बाबा कारामुक्त हो गये।

संत नागा निरंकारी बालकोंके साथ खेलते और भ्रमण करते समय अपने आपको पूर्णरूपसे उन्हींकी चेष्टाओंपर निर्भर कर देते थे। बालक बुलाते थे तो बोलते थे, खिलाते थे तो खाते थे; चाहे बालक उन्हें पानीमें गिरा दें, चाहे बालूमें सुला दें, चाहे ढकेल दें, उन्हें उनकी प्रत्येक चेष्टा मान्य थी। कभी-कभी तो बालमण्डलीके कारण उनके प्राण संकटमें पड़ जाते थे, पर बाल-शक्तिके रूपमें अदृश्य भगवत्-शक्ति ही उनकी ऐसे अवसरोंपर रक्षा करती थी। बालक जहाँ रातको लिटा देते थे, वहीं लेट जाते थे; कोई कुछ ओढ़ा देता था तो ओढ़ लेते थे; यदि ओढ़नेका वस्त्र नीचे गिर जाता या खिसक जाता तो उसे फिर नहीं उठाते थे। एक बार वे यमुनाजीके किनारे बालकोंके साथ खेल रहे थे। जिस गाँवके वे बालक थे, वह यमुनातटसे थोड़ी दूरपर था। नागा बाबा एक कगारपर खड़े थे, यमुनाका वेग अत्यन्त तीव्र था। बालकोंने उनको यमुनामें ढकेल दिया। वे प्रवाहके साथ बहते-बहते कोसों दूर चले आये। तटके निकट ही एक ग्राम था। कुछ बालक खेल रहे थे। नागा बाबा बाहर निकलकर पहलेकी ही तरह उनके साथ खेलने लगे।

एक बार उन्होंने यह धारणा बना ली थी कि जिस दिशाकी ओर पैर बढ़ें, उसी ओर चलते रहना चाहिये, पीछे नहीं लौटना चाहिये। उत्तर दिशाकी ओर चलनेपर नेपाल जा पहुँचे, नेपालसे तिब्बत और तिब्बतसे चीन पहुँच गये। चीनमें वे किसीकी भाषा नहीं समझ पाते थे। यदि कोई खाने-पीनेके लिये कुछ दे देता तो प्रसन्नतासे खा-पी लिया करते थे। किसीसे कुछ माँगनेकी वृत्ति तो थी ही नहीं। चीनमें वे एक अंग्रेजके बगीचेमें जा पहुँचे; जबतक वे चीनमें थे, उन्होंने उसी बगीचेमें निवास किया। अंग्रेज सज्जनने उनको भारतीय संत समझकर अनुकूल भोजन आदिका प्रबन्ध कर दिया। बड़ी सेवा की। चीनसे ब्रह्मदेश तथा आसाममें विचरते हुए वे भारत आये।

संत नागा निरंकारी उच्चकोटिके सिद्ध पुरुष थे; बड़े भगवद्विश्वासी थे। वे कहा करते थे कि 'प्रत्येक अवस्थामें भगवान्पर निर्भर रहना चाहिये; यही सबसे बड़ी आस्तिकता है।' एक समय वे भ्रमण करते-करते एक लम्बे और सघन वनमें पहुँच गये। कोसोंतक बस्तीका नाम नहीं था। वे तीन-चार दिनके भूखे-प्यासे थे। वनमें उन्हें एक सतीकी समाधि दीख पड़ी। वे ध्यानस्थ होकर बैठ गये। थोड़े समयके बाद सती थालीमें भोजन तथा मेवे, मिष्टान्न और फल लेकर प्रकट

हो गयीं। नागा बाबाने भोजन किया, सती अदृश्य हो गयीं। इस तरह एक रहस्यमयी भागवती शक्ति सदा उनकी रक्षामें तत्पर थी।

एक बार नागा बाबा बदरीनारायणकी यात्रा कर रहे थे। साथमें दो व्यक्ति और थे। संत नागा लक्ष्मणझूलाके मध्य भागसे गंगाजीमें कूद पड़े। गंगाजी उस स्थानपर बहुत गहरी हैं, धारा अमित तेज है। साथके व्यक्ति लक्ष्मणझूलेवाली घटनाकी सूचना कानपुरके किसी शिष्यको तारद्वारा देकर आगे बढ़ गये। कुछ समयके बाद फतेहपुर जनपदमें बालमण्डलीके साथ उनको खेलते और विचरते देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। इस घटनाके सम्बन्धमें उन्होंने बताया था कि 'जब मैं लक्ष्मणझूलापर था, मुझे ऐसा लगा कि गंगाजीके नीचे ऋषिमण्डली है। मैं उसमें सम्मिलित होनेके लिये कूद पड़ा।' बात ठीक थी, ऋषिमण्डलीमें पहुँचनेपर मेरा पैर एक चक्रमें पड़ गया। ऋषियोंको मेरी उपस्थितिसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उनसे बातकर मैं लौट आया। इस घटनासे उनकी दिव्य दृष्टि और अपार योगशक्तिका पता चलता है।

वे परम तपस्वी थे। बदरीनारायण-यात्रा-कालमें ही वे एक दिन एक चट्टीपर विश्राम कर रहे थे। वे ध्यानमें तल्लीन थे। उनके साथके शिष्यने देखा कि साँपके आकार-प्रकारका एक लम्बा तेजोमय प्रकाश नागाजीके सामने आकर अदृश्य हो गया। ध्यानके बाद शिष्यके पूछनेपर वे मुसकराने लगे। उन्होंने बतलाया कि साक्षात् भगवान् बदरीनारायण अपने परम तेजोमय रूपमें उन्हें दर्शन देने आये थे।

संत नागा निरंकारी ध्यानयोगी थे। वे कहा करते थे कि 'ध्यानयोगकी बड़ी महिमा है। ध्यानयोगसे मैंने लक्ष्मीजीका दर्शन किया था, सतीजीसे भिक्षा प्राप्त की थी। ध्यानमें मुझे लक्ष्मीजीने दर्शन देकर मेरे दाहिने हाथपर अपने हाथके अँगूठेकी छाप लगा दी और कहा—'तुमको भगवान्के पास जानेसे कोई नहीं रोक सकता।' उस छापकी सहायतासे मैं भगवद्धाममें गया। हनुमान्जीने मुझे रोकनेकी चेष्टा की, पर छाप देखकर विवश हो गये। जय-विजयका भी प्रयत्न विफल हो गया। मैंने भगवान्का परम दिव्यरूप देखा, उनके कुण्डल और किरीट-मुकुट बड़े दिव्य थे।' संत नागा निरंकारीके जीवनकी इन दिव्य घटनाओंका श्रद्धा और विश्वासके प्रकाशमें ही दर्शन किया जा सकता है। ये अतर्क्य हैं। उनका स्पष्ट कहना था कि 'जो जीव निर्भय है, उसीको हम अपना निकटस्थ मानते हैं। जो जीवात्मा जितना ही अधिक दैन्यभावसे युक्त और निरभिमानी होगा, वही ध्यानवस्थामें हमसे मिल सकता है।'

संत नागा निरंकारी संकल्प-विकल्पोंसे परे थे। सदा भगवदानन्दके पारावारमें निमग्न रहते थे। एक बार असोथरके राजपरिवारके एक विशिष्ट सदस्यके आग्रहसे वे राजप्रासादमें गये। चलते समय उनके शरीरपर उन व्यक्तिने एक कीमती दुशाला डाल दिया। वे बालमण्डलीके साथ खेलते-खेलते अपनी कुटीपर आये, धूनी जल रही थी। धूनीके सामने बैठ गये। दुशाला धूनीमें गिरकर जल गया। विरक्तिके हिमालयपर अवस्थित नागा निरंकारीने लोभके ज्वालामुखीपर हाथ नहीं रखा।

संत नागा निरंकारी परमात्माके विराट्रूपके अखण्ड ध्यानमें लीन रहते थे। मायासे परम अलिप्त होकर वे आत्मराज्यमें सदा प्रतिष्ठित थे। वे प्रदर्शन और चमत्कारसे सदा दूर रहते थे। भगवान्के नाम-जपपर बड़ा जोर देते थे। जप और ध्यानयोगमें ही उन्होंने अपनी तपोमयी साधनाका परम स्वरूप स्थिर किया। उनकी सदा सहज समाधि लगी रहती थी। वे परमहंसपदमें प्रतिष्ठित होकर अपनी दिव्य अलौकिक दृष्टिसे विश्वमय, विश्वाधार, सत्स्वरूप परमात्माका दर्शन करते रहते थे। वे जन्म-जन्मान्तरसे वैराग्यके अभय राज्यमें विचरते हुए कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत तथा अवधूत अवस्थाओंको पारकर नागा निरंकारीके रूपमें नाम-शरीर अपनाकर अभिव्यक्त हुए थे। कर्मभोगसे ऊपर उठनेका एकमात्र उपाय उन्होंने परमात्माका भजन बताया। उन्होंने कहा कि 'पुण्यकार्य बढ़ा देने तथा परमात्माका निरन्तर भजन करनेसे पूर्वकृत पाप नष्ट हो जाते हैं। सुखेच्छापूर्तिमें पुण्य साधक होते हैं और पाप बाधक। उन्होंने निर्गुण-

निराकार चिन्मय परमात्मतत्त्वका ही भजन किया। ध्यानस्थ होनेपर वे भगवान्‌के विभिन्न रूपोंका दर्शन करते थे। ध्यानमें उन्हें लोक-लोकान्तरके दृश्य दीख पड़ते थे। वे कहा करते थे, 'तत्त्वज्ञान भीतरसे होगा। भजन करो, जप करो, ध्यान करो—जो कुछ भी करो, उसे मनसे करो। सब जीव परब्रह्ममें ही रहते हैं, परब्रह्मकी खोज अपने भीतर करो। अपने आपको परब्रह्ममें ही अनुभव करो। उन्होंने सत्य-नाम कर्तापुरुषका अपने एक पदमें वर्णन किया है तथा उनसे प्रार्थना की है—

पड़ी मेरी नइया विकट मँझधार।
यह भारी अथाह भवसागर, तुम प्रभु करो सहार॥
आँधी चलत, उड़ात झराझर, मेघ-नीर-बौछार।
झाँझर नइया भरी भारसे, केवट है मतवार॥
किहि प्रकार प्रभु लगूँ किनारे, हेरो दया-दिदार।
तुम समानको पर-उपकारी, हो आला सरकार॥
खुले कपाट-यंत्रिका हियके, जहँ देखूँ निरविकार।
'नागा' कहैं, सुनो, भाई संतो! सत्य-नाम करतार॥

(ब्रह्मवाणी)

उन्होंने अखण्ड, निर्विकार, परम चेतन तत्त्व परमात्माका आजीवन चिन्तन किया। वे ध्यानमें लोक-लोकान्तरोंमें विचरण करते थे। उन्होंने ध्यानमें सुमेरुपर्वतको भी देखा था और उसे सिद्धोंका निवासस्थान बताया था। वे ध्यानमें इन्द्रलोकमें भी गये थे। उन्होंने इन्द्रलोकका बड़ा सुन्दर अनुभवपूर्ण वर्णन किया है।

संत-वाणी परम अनुभूतिमयी होती है। संत नागा निरंकारीके अनुभवपूर्ण शब्द उतने ही सत्य हैं, जितने सत्य परब्रह्म परमात्मा हैं। संत-साहित्य-जगत् उनकी महती देन 'ब्रह्मवाणी' के लिये उनका सदा आभारी रहेगा। उनकी 'ब्रह्मवाणी' अलौकिक वाङ्मय है। उनकी उक्ति है कि मन लगाकर परमेश्वरका भजन करनेसे हृदय निर्मल होनेपर सत्यज्ञानकी प्राप्ति होती है और परम शान्ति मिलती है।

संत नागा निरंकारी जीवमात्रके प्रति दयालु थे। अपने लिये वे कठोर तपस्वी और सहनशील थे। दीन-दुःखियों और अभावपीड़ितोंकी सेवा और पापियोंके समुद्धारके लिये ही उन्होंने शरीर धारण किया था। वे किसीकी निन्दा-स्तुतिके फेरमें कभी नहीं पड़ते थे। वे परम करुणामय थे। उनकी उक्ति है—'सब परमात्माके जीव हैं, किसीपर कोप न करके दया ही करनी चाहिये। सब जीव अपने-अपने कर्मानुसार सुख-दुःख भोगते हुए गति पाते हैं। भूमिपर चलनेवाला प्राणी एकदम आकाशमें किस तरह उड़ सकता है; सबकी उन्नति धीरे-धीरे ही होती है। सब जीवोंको परमात्मा देखते हैं। वे ही सबके स्वामी हैं। हमें अपनी ओरसे किसी भी जीवको नहीं सताना चाहिये।'

संत नागा निरंकारीने जीवनके अन्तिम दिन कानपुर जनपदके पाली नामक स्थानपर बिताये। पालीका राजपरिवार उनमें अतुल श्रद्धा रखता था। वे पाली-निवासकालमें अपनी सहज अवधूत-अवस्थामें प्रतिष्ठित थे। पालीके कण-कणमें उनकी दिव्य आत्माभिव्यक्तिका दर्शन होता है। उन्होंने अपने परमधाम-कैलासलोक-गमनकी बात बहुत पहले ही कह दी थी। पाली-कुटीके सामने चनेका एक खेत था। नागाजीने कहा कि 'हमने ध्यानमें देखा है कि इसी चनेके खेतमें लोग हमारे शरीरको चितामें जला रहे हैं।' उन्होंने इस तरह संकेत कर दिया कि इसी स्थानपर मेरा समाधि-मन्दिर बनेगा। अपने ही कथनके अनुरूप संवत् १९९३ वि०की कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीको उन्होंने रातमें कैलासलोककी प्राप्ति की। उनके शरीरका दाह-संस्कार पालीराज्यके उसी चनेके खेतमें विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। उस स्थानपर उनका भव्य समाधि-मन्दिर जगत्‌को सत्य, शान्ति और प्रेमका दिव्य सन्देश देता हुआ अवस्थित है; समाधिके दर्शनमात्रसे मन शान्तिके गम्भीर सागरमें निमग्न होकर दिव्य, शाश्वत-अखण्ड सत्यामृतका रसास्वादन करता है। नागा निरंकारीकी समाधिकी दिव्यता और नीरवतासे मन मुग्ध हो उठता है; यह समाधि-मन्दिर उनकी तपस्याका भौम स्मारक है। संत नागा निरंकारी ब्रह्मयोगी, परम अवधूत और तपस्वी संत थे।

गो-सेवासे सन्तान-प्राप्ति

[नार्मद शिवलिंग और शालग्रामशिला सामान्य पत्थर नहीं, उनमें परब्रह्म परमात्माकी नित्य सन्निधि होती हैं; गंगा नदीमात्र नहीं, जीवोंके उद्धारके लिये ब्रह्मद्रवरूपमें भगवान्‌की करुणाका प्रवाह है; संसारको प्राणवायु देनेवाला पीपल सामान्य वृक्ष नहीं, भगवान्‌की विभूति है; ठीक इसी प्रकार गोमाता सामान्य पशु नहीं, भगवान्‌की पोषणात्मिका शक्ति हैं। महाराज दिलीपको पुत्र प्रदान करनेवाली गोमाता आज भी सन्तानप्रदात्री हैं। यहाँ गोसेवासे सन्तानप्राप्तिकी दो घटनाएँ प्रस्तुत हैं—सम्पादक *]*

[१]

यह घटना ३० नवम्बर २०१५ ई० की है, मेरी पत्नी श्रीमती पूजा गुप्ता गोमातामें विशेष श्रद्धा-भाव रखती हैं। वे हमारी शादीके पहलेसे ही नियमित गो-सेवा और गो-पूजन करती रही हैं। उनकी गोमाताके प्रति भक्ति और गोसेवाके प्रति रुचि देखकर एक बार मैंने उनसे कहा कि वे गोमातासे प्रार्थना करें कि हमें प्रथम सन्तानके रूपमें पुत्रकी प्राप्ति हो, उन्होंने गोमातासे प्रार्थना की और उसी माह वे गर्भावस्थाको प्राप्त हो गयीं। गर्भावस्थाके समयमें भी उन्होंने नियमित गो-सेवा, गो-पूजन आदि जारी रखा। गोमाताकी कृपासे गर्भावस्थाके नौ माह बिना किसी कष्टके सुगमतापूर्वक बीत गये, फिर ३० नवम्बर २०१५ को सुबह लगभग साढ़े पाँच बजे डिलेवरीके लिये इन्दौर (मध्यप्रदेश) जानेके उद्देश्यसे मैंने जैसे ही घरका दरवाजा खोला तो बाहरका दृश्य देखकर अचंभित रह गया। घरके द्वारपर ३०-४० की संख्यामें गोमाता आयी हुई थीं, मैंने तुरंत अपनी पत्नीको बुलाया तो वह भी यह दृश्य देखकर अचंभित रह गयी। हड़बड़ाहटमें हम गोमाताका पूजन नहीं कर सके। बस, उनमेंसे १-२ गोमाताको हमने गुड़ एवं रोटी दी। फिर उनमेंसे एक गोमाताने घरकी सीढ़ीपर आकर गो-मूत्र किया, इससे हमारे मनमें अपार हर्षकी लहर व्याप्त हो गयी; क्योंकि लोक-मान्यतामें इसे शुभ संकेत माना जाता है।

इसके बाद हम घरके अन्दर गये और तुरंत ही अपनी यात्रामें साथ ले जानेका सामान लेकर बाहर आये तो मैंने देखा कि सभी गोमाताएँ अदृश्य हो गयी हैं, तब हमें इस बातका आभास हुआ कि गोमाता निश्चित रूपसे हमें आशीर्वाद देने आयी थीं। गोमाताका यह दिव्य दर्शन स्मरण करते-करते हम इन्दौर पहुँचे, वहाँ भी पल-पल गोमाताका स्मरण करते-करते २ दिसम्बर २०१५ को नार्मल डिलेवरीद्वारा हमारी प्रथम सन्तानके रूपमें स्वस्थ एवं सुन्दर बालकका जन्म हुआ। यह घटना जब हमने अपने गुरुदेवको बतायी तो बरबस उनके श्रीमुखसे भी आशीर्वचनस्वरूप यही निकला कि आपको गोसेवाकी अनुभूति और गोमाताकी कृपा प्राप्त हो गयी। गुरुदेवके आर्शीवाद और मार्गदर्शनसे हमारा पूरा परिवार सन् २००४ ई० से बालाजी गोशाला डोंगरेगाँव (मध्यप्रदेश)-से जुड़ा है।

धन्य हैं जगज्जननी गोमाता, जिन्होंने हमें दिव्य दर्शन दिया और अपनी कृपानुभूति कराते हुए हमारी मनोकामना पूर्ण कर दी।

हे गोमाता! हम नित्य तेरे अनुगामी बने रहें, हे जगदम्बा बारम्बार आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम है।

—महेश गुप्ता 'घाटीवाला'

[२]

मेरे पुत्र विनय कुमारकी पत्नी सौ० विनीता जब गर्भवती थी और ७ मासका गर्भ था, उस वक्त बच्चेका पूर्ण विकास नहीं हुआ था। खामगाँव तथा अकोलाके डॉक्टरोंको दिखाया, सबका यही कहना था कि बच्चेमें कोई वृद्धि नहीं है, साधारण प्रसव नहीं होगा तथा बच्चेको इन्क्यूबेटर मशीनमें रखना पड़ेगा। बचे हुए दो महीनोंमें हमने बहूके हाथसे गायको गुड़-रोटी खिलवायी तथा गायकी परिक्रमा नित्य करायी, जिसके परिणाम स्वरूप साधारण प्रसूति हुई। पुत्री श्रद्धा चंचल और होशियार है, ४-५ मास पहले बोलने तथा चलने लगी, बहुत ही सुन्दर तथा होनहार बच्ची है। मैं तो मानता हूँ कि यह गोमाताका आशीर्वाद है।

—महावीरप्रसाद अग्रवाल [गोधन]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

उत्तम बर्तावके साधन

सप्रेम हरिस्मरण। आपने लिखा 'मेरा स्वभाव तामसी होता चला जा रहा है। सबके साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता। ऐसा कौन-सा साधन है, जिससे स्वभाव बदल जाय और सबके साथ सात्त्विक व्यवहार होने लगे!' सात्त्विक व्यवहार न होना आपको बुरा लगता है और सात्त्विक व्यवहार हो, ऐसी आपकी इच्छा है। एक तो यही स्वभाव बदलनेमें बड़ा कारण हो सकता है। मनुष्यको जो चीज वस्तुतः बुरी मालूम होने लगती है और उसका रहना काँटेकी तरह चुभता है, तब वह चीज धीरे-धीरे छूट ही जाती है। और जिसकी सच्ची चाह होती है, वह चीज आगे-पीछे मिलती ही है; परंतु बात यह है कि किसीके साथ बुरा बर्ताव करना—यह असलमें स्वभाव नहीं है। आत्माका तो स्वभाव है परम आनन्द और परम प्रेम! वह स्वयं आनन्दरूप है और इसलिये आनन्द ही वितरण करना चाहता है। न यह अन्तःकरणका ही धर्म है। यह तो बाहरसे आया हुआ दोष है, जो सावधानीके साथ प्रयत्न करनेपर नष्ट हो सकता है। निम्नलिखित बातोंपर ध्यान रखकर चेष्टा करनी चाहिये। साधना या चेष्टा जबतक लगनसे नहीं होती, तबतक सफल नहीं होती। पथ्य-परहेजका ख्याल रखते हुए सावधानीके साथ दवा लेनेसे रोग मिटता है—

(१) सब जीवोंमें भगवान् बसते हैं, भगवान् ही सब बने हुए हैं, फिर बुरा बर्ताव किसके साथ किया जाय।

अब हौं कासों बैर करौं।
कहत पुकारत हरि निज मुखतें घट घट हौं बिहारौं॥

हम किसीके भी साथ बुरा बर्ताव करते हैं तो वह भी भगवान्के साथ ही करते हैं।

(२) बुरा बर्ताव करनेसे भगवान् नाराज होते हैं, क्योंकि सभी जीव भगवान्की सन्तान हैं; किसीके बालकको कष्ट पहुँचानेसे माँ जरूर नाराज होगी।

(३) बुरा बर्ताव करनेसे द्वेष, वैर, क्रोध, विषाद आदि दोषोंका जन्म-जन्मान्तरतक बड़ा विस्तार होता है, इससे अपनी और जगत्की बड़ी हानि होती है, लौकिक और पारमार्थिक भी।

(४) बुरा बर्ताव हम तभी करते हैं, जब हमें कोई बुरा लगता है—दोष-दृष्टिसे। दोष-दृष्टि सदा ही द्वेष और जलन पैदा करती है, इससे अपनी बड़ी हानि होती है। जिसको सबमें दोष देखनेकी आदत पड़ जाती है, वह जगत्से कुछ सीख नहीं सकता और सदा जला करता है। न अच्छे रास्तेपर ही जा सकता है; क्योंकि उसे रास्ता बतलानेमें और रास्तोंमें दोष-ही-दोष दीखता है।

(५) जब हमारे साथ कोई बुरा बर्ताव करता है तो हमें दुःख होता है, इसी प्रकार हम जब दूसरेके साथ बुरा बर्ताव करते हैं तो उसे भी दुःख होता है। हम स्वयं तो यह चाहें कि सब हमसे अच्छा बर्ताव करें और हम दूसरोंसे बुरा बर्ताव करें, यह अधर्म है। शास्त्र कहते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'धर्मका सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो। जो बात अपनेको प्रतिकूल लगती है, वह दूसरोंके साथ कभी न करो।'

(६) अच्छे बर्तावसे प्रेम बढ़ता है, बुरे बर्तावसे वैर बढ़ता है।

(७) बुरा बर्ताव कामना, अभिमान, द्वेष और प्रतिकूल भावना आदिके कारण होता है। अतएव इनका सावधानीके साथ त्याग करना चाहिये।

(८) भगवान्से कातर प्रार्थना करनी चाहिये कि

'भगवन्! किसी भी हेतुसे मैं किसी भी प्राणीके साथ कभी बुरा बर्ताव न करूँ।'

(९) श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यह वाणी याद रखनी चाहिये।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'अपनेको एक तिनकेसे भी बहुत छोटा समझनेवाले, वृक्षके समान सहनशील, स्वयं अमानी और दूसरोंको मान देनेवाले पुरुषोंके द्वारा हरि सदा कीर्तनीय हैं।' इस प्रकारका भाव हो जानेपर सहज ही किसीसे बुरा बर्ताव नहीं होगा।

और भी बहुत-सी बातें हैं। इनमेंसे किसी भी एक या एकाधिक बातपर पूरा ख्याल रखनेसे बुरा बर्ताव दूर हो सकता है। संसारमें हम सभी मुसाफिर हैं। आपसमें हिलमिलकर, एक-दूसरेके दोषोंको सहकर परस्पर सबकी सेवा करते हुए रहेंगे तो आरामसे मुसाफिरीके दिन कटेंगे और नये मुकदमे नहीं लगेंगे तथा लड़ते-झगड़ते रहेंगे तो मुसाफिरी भी भयदायक और अशान्तिरूप हो जायगी तथा बीचमें ही नये-नये फौजदारीके मुकदमोंमें फँसकर हैरान और परेशान भी होंगे।

तुलसी या संसारमें, भाँति भाँतिके लोग।
सबसों हिल मिल चालिये, नदी-नाव संजोग॥
तेरे भावें जो करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठकर, अपनो भवन बुहार॥
बुरा जो देखन मैं गया, बुरा न पाया कोय।
जो तन देखा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय॥

श्रीभगवान्‌का स्मरण और जप निरन्तर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(२)

निज-दोष देखनेवाले भाग्यवान् हैं

संसारमें ऐसा कौन है, जो सर्वथा निर्दोष हो। त्रिगुणमय संसारमें तम भी रहेगा ही। जिसको अपने दोष दीखते हैं—भयकंररूपमें दीखते हैं, जो दोषोंके कारण दुखी रहता है, जिसके हृदयमें दोष चुभते हैं, चाहता है एक भी न रहे, प्रयत्न भी करता है, परंतु सर्वथा नाश नहीं कर सकता, वह तो बड़ा भाग्यवान् है। संसारमें ऐसे लोग भी हैं जो अपने दोषोंको या तो देखते ही नहीं और देखते हैं तो 'गुण' रूपमें तथा दूसरोंके दोष उनको राई-से पहाड़-जैसे लगते हैं।

'आप पापको नगर बसावत सहि न सकत पर खेरो।'

श्रीभगवान्‌का स्मरण आप करते ही हैं; उनका स्मरण ऐसी आग है, जो सारे दोषोंको जला देती है। और क्या उपाय है अपने पास।

भगवान्‌की दया

आप इतना संकोच क्यों करते हैं? आप सच मानिये, मुझे न तो आपका मेरे पास रहना कभी भार मालूम होता है, न आप जाते हैं तब रोकनेका ही मन होता है।

स्वप्नमें या जाग्रत्‌में श्रीभगवान् प्रेरणाद्वारा आकर्षण करते हैं, सो बहुत ही अच्छी बात है। विघ्न भी भगवान्‌की दयासे आते हैं। बीच-बीचमें विघ्न न आये तो शायद अधिक शिथिलता आ जाय। जैसे रात्रि दूसरे दिनके ताजा प्रभातका सुख देनेके लिये आती है, वैसे ही विघ्न भी साधनमें उत्साह पैदा करनेके लिये ही आते हैं। श्रीभगवान् तो सब कुछ देखते ही हैं। देखते क्या हैं—उन्हींके इंगितसे सब कुछ होता है; फिर अमंगलकी क्या सम्भावना है? मंगलमयका इंगित मंगलमय ही होगा। अभी कुछ वियुक्त रहनेकी इच्छा है तो रहिये। मनसे तो शायद आप वियुक्त हो सकेंगे नहीं। शरीर तो वियोग-संयोगरूप है ही। जो प्रभु-इच्छा है, उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। 'गोविन्द नाम आधार' सबको ही है। कोई मानते हैं, कोई नहीं।

'उस छबिमें लगन लगा लीजे, गोविन्द नाम आधार रहे।'

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।३० बजेतक	रवि	कृत्तिका रात्रिमें १।५५ बजेतक	५नवम्बर	**वृषराशि** दिनमें ८।५७ बजेसे।
द्वितीया प्रातः ७।२३ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, १२।२२ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६।१४ बजेसे रात्रिशेष ५।६ बजेतक, **विशाखाका सूर्य** रात्रिमें २।१६ बजे।
चतुर्थी रात्रिमें २।४३ बजेतक	मंगल	मृगशिरा ,, १०।४३ बजेतक	७ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ११।३२ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।२२ बजे।
पंचमी ,, १२।२१ बजेतक	बुध	आर्द्रा ,, ९।२ बजेतक	८ ,,	× × ×
षष्ठी ,, १०।३ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु ,, ७।३१ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।३ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें १।५४ बजेसे।
सप्तमी ,, ७।५४ बजेतक	शुक्र	पुष्य सायं ५।५७ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ८।५९ बजेतक, **मूल** सायं ५।५७ बजेसे।
अष्टमी सायं ५।५९ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ४।४३ बजेतक	११ ,,	**सिंहराशि** सायं ४।४३ बजेसे।
नवमी ,, ४।२३ बजेतक	रवि	मघा दिनमें ३।४८ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।४५ बजेसे, **मूल** दिनमें ३।४८ बजेतक।
दशमी दिनमें ३।९ बजेतक	सोम	पू०फा० ,, ३।१२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।९ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ९।९ बजेसे।
एकादशी ,, २।२० बजेतक	मंगल	उ०फा० ,, ३।२ बजेतक	१४ ,,	**उत्पन्ना एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, २।१ बजेतक	बुध	हस्त ,, ३।२१ बजेतक	१५ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ३।४४ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, २।१३ बजेतक	गुरु	चित्रा सायं ४।९ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१३ बजेसे रात्रिमें २।३५ बजेतक, **वृश्चिकसंक्रान्ति** रात्रिमें १२।९ बजे, **हेमन्त-ऋतु** प्रारम्भ।
चतुर्दशी ,, २।५७ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ५।२९ बजेतक	१७ ,,	× × ×
अमावस्या सायं ४।७ बजेतक	शनि	विशाखा रात्रिमें ७।१६ बजेतक	१८ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १२।४९ बजेसे, **अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५।४५ बजेतक	रवि	अनुराधा रात्रिमें ९।२६ बजेतक	१९नवम्बर	**मूल** रात्रिमें ९।२६ बजेसे।
द्वितीया रात्रिमें ७।४३ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ११।५३ बजेतक	२० ,,	**धनुराशि** रात्रिमें ११।५३ बजेसे, **अनुराधाका** सूर्य प्रातः ७।१२ बजे।
तृतीया ,, ९।५० बजेतक	मंगल	मूल ,, २।३० बजेतक	२१ ,,	**मूल** रात्रिमें २।३० बजेतक।
चतुर्थी ,, १२।० बजेतक	बुध	पू० षा० रात्रिशेष ५।५ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।५५ बजेसे रात्रिमें १२।० बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १।५८ बजेतक	गुरु	उ० षा० अहोरात्र	२३ ,,	**मकरराशि** दिनमें १०।४० बजेसे, **श्रीरामविवाह।**
षष्ठी ,, ३।३९ बजेतक	शुक्र	उ० षा० प्रातः ७।२९ बजेतक	२४ ,,	× × ×
सप्तमी रात्रिमें ४।५३ बजेतक	शनि	श्रवण दिनमें ९।३४ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४।५३ बजेसे, **कुम्भराशि** रात्रिमें १०।२३ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १०।२३ बजे।
अष्टमी रात्रिशेष ५।४१ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ११।१२ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** सायं ५।१७ बजेतक।
नवमी ,, ५।५६ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, १२।२४ बजेतक	२७ ,,	**महानन्दानवमी।**
दशमी ,, ५।४० बजेतक	मंगल	पू० भा० ,, १।४ बजेतक	२८ ,,	**मीनराशि** प्रातः ६।५४ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें ४।५५ बजेतक	बुध	उ० भा० ,, १।१६ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** सायं ५।१७ बजेसे रात्रिमें ४।५५ बजेतक, **मोक्षदा एकादशीव्रत (स्मार्त्त), गीता-जयन्ती, मूल** दिनमें १।१६ बजेसे।
द्वादशी ,, ३।४४ बजेतक	गुरु	रेवती ,, १२।५९ बजेतक	३० ,,	**मेषराशि** दिनमें १२।५९ बजेतक, **पंचक** समाप्त दिनमें १२।५९ बजे, **एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी ,, २।१० बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, १२।१७ बजेतक	१ दिसम्बर	**प्रदोषव्रत, मूल** दिनमें १२।१७ बजेतक।
चतुर्दशी ,, १२।१७ बजेतक	शनि	भरणी ,, ११।१५ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।१७ बजेसे, **वृषराशि** सायं ४।५६ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १०।९ बजेतक	रवि	कृत्तिका ,, ९।५७ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।१३ बजेतक, **पूर्णिमा, ज्येष्ठाका सूर्य** दिनमें १०।२३ बजे।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।५२ बजेतक	सोम	रोहिणी दिनमें ८।२६ बजेतक	४दिसम्बर	**मिथुनराशि** दिनमें ९।३६ बजेसे।
द्वितीया सायं ५।३२ बजेतक	मंगल	मृगशिरा प्रात:६।४८ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४।२२ बजेसे।
तृतीया दिनमें ३।११ बजेतक	बुध	पुनर्वसु रात्रिमें ३।२७ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।११ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ९।५२ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।१० बजे।
चतुर्थी ,, १२।५५ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, १।५७ बजेतक	७ ,,	**मूल** रात्रिमें १।५७ बजेसे।
पंचमी ,, १०।४९ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, १२।३९ बजेतक	८ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें १२।३९ बजेसे।
षष्ठी ,, ८।५६ बजेतक	शनि	मघा ,, ११।३७ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।५६ बजेसे रात्रिमें ८।९ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ११।३७ बजेतक।
सप्तमी प्रात: ७।२२ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, १०।५६ बजेतक	१० ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ४।५२ बजेसे।
नवमी रात्रिशेष ५।२६ बजेतक	सोम	उ०फा० ,, १०।३९ बजेतक	११ ,,	× × ×
दशमी ,, ५।१० बजेतक	मंगल	हस्त ,, १०।५१ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** सायं ५।१८ बजेसे रात्रिशेष ५।१० बजेतक।
एकादशी ,, ५।२६ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ११।३३ बजेतक	१३ ,,	**तुलाराशि** दिनमें ११।५२ बजेसे, **सफला एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
द्वादशी ,, ६।१५ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, १२।४५ बजेतक	१४ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी अहोरात्र	शुक्र	विशाखा ,, २।२३ बजेतक	१५ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ७।५९ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी प्रात: ७।२९ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ४।२९ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** प्रात: ७।२९ बजेसे रात्रिमें ८।१९ बजेतक, **धनुसंक्रान्ति** दिनमें १२।१३ बजे, **मूल** रात्रिमें ४।२९ बजेसे।
चतुर्दशी दिनमें ९।१० बजेतक	रवि	ज्येष्ठा अहोरात्र	१७ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, ११।९ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा प्रात: ६।५३ बजेतक	१८ ,,	**धनुराशि** प्रात: ६।५३ बजेसे, **सोमवती अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७-२०१८, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।१९ बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ९।२९ बजेतक	१९दिसम्बर	**मूल** दिनमें ९।२९ बजेतक।
द्वितीया ,, ३।२७ बजेतक	बुध	पू०षा० ,, १२।६ बजेतक	२० ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ६।४३ बजेसे।
तृतीया सायं ५।२५ बजेतक	गुरु	उ०षा० ,, २।३३ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ६।१५ बजेसे।
चतुर्थी रात्रिमें ७।५ बजेतक	शुक्र	श्रवण सायं ४।४३ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।५ बजेतक, **कुंभराशि** रात्रिशेष ५।३६ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ५।३६ बजे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, सायन मकरका सूर्य** प्रात: ७।४४ बजे।
पंचमी ,, ८।१७ बजेतक	शनि	धनिष्ठा रात्रिमें ६।२९ बजेतक	२३ ,,	× × ×
षष्ठी ,, ९।३ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, ७।४९ बजेतक	२४ ,,	**अन्नरुपाषष्ठी व्रत** (बंगाल)।
सप्तमी ,, ९।१६ बजेतक	सोम	पू० भा० ,, ८।३७ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।१६ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें २।२५ बजेसे।
अष्टमी ,, ८।५९ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, ८।५५ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।७ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ८।५५ बजेसे।
नवमी ,, ८।११ बजेतक	बुध	रेवती ,, ८।४४ बजेतक	२७ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ८।४४ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ८।४४ बजे।
दशमी ,, ६।५८ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,, ८।८ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ६।११ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ८।८ बजेतक।
एकादशी सायं ५।२४ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, ७।१३ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** सायं ५।२४ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें १२।५३ बजेसे, **पुत्रदा-एकादशीव्रत** (सबका), **पू०षा० का सूर्य** दिनमें १।१० बजे।
द्वादशी दिनमें ३।२९ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ५।५७ बजेतक	३० ,,	**शनिप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १।२२ बजेतक	रवि	रोहिणी सायं ४।२९ बजेतक	३१ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ३।४१ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ११।४ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, २।५२ बजेतक	१ जनवरी	**भद्रा** दिनमें ११।४ बजेसे रात्रिमें ९।५३ बजेतक, व्रतपूर्णिमा, **सन् २०१८ प्रारम्भ।**
पूर्णिमा प्रात: ८।४२ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, १।११ बजेतक	२ ,,	**कर्कराशि** रात्रिशेष ५।५७ बजेसे, **पूर्णिमा, माघस्नान प्रारम्भ।**

कृपानुभूति

ना जाने किस वेष में नारायण मिल जायँ

'ना जाने किस वेष में नारायण मिल जायँ' कविकी यह पंक्ति निश्चय ही अनुभव एवं व्यवहारपर घटित हुई होगी। जनसामान्यके साथ भी ऐसी घटना होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि नारायण तो सर्वव्यापी हैं। मेरे एक मित्र जो दिल्लीकी एक प्रतिष्ठित कम्पनीमें कार्यरत हैं, अप्रैल २०१५ के प्रथम सप्ताहमें एक ऐसी ही घटना उनके साथ घटी, जो उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है—

'कम्पनीमें तीन दिनोंकी छुट्टी थी, परंतु मुझे कम्पनीके कार्यसे पानीपत जाना था। भाग्यवश वहाँका कार्यक्रम स्थगित हो गया। मैंने सोचा कि मेरी धर्मपत्नी नालन्दा (बिहार)-में रहती हैं, वे आजकल यहीं आयी हुई हैं तो क्यों न उन्हें मथुरा-वृन्दावनकी यात्रा करा दूँ; उनकी तीर्थस्थलोंमें दर्शनकी बड़ी इच्छा भी रहती है। मैंने जब अपने मनकी बात उन्हें बतायी तो वे भी सहर्ष तैयार हो गयीं।

सबसे पहले हमने गोवर्धनकी यात्रा की। हम पहली बार मथुरा-वृन्दावन गये थे, सो वहाँके नियमोपनियमसे अनभिज्ञ थे। अतः भगवान् श्रीकृष्णको स्मरणकर हमने यात्रा प्रारम्भ कर दी। मेरी पत्नीने कहा कि गर्मी भी शुरू हो गयी है, कहीं ऐसा न हो कि हमलोग गोवर्धन महाराजकी पैदल परिक्रमा न पूरी कर सकें, अतः हमने एक ऑटो कर लिया। ऑटो-चालक गोवर्धन-परिक्रमाकी विशेषताएँ बताता रहा। कुछ दूर चलकर हम एक सुन्दरसे स्थानपर आ गये। वहाँ हमारी इच्छा हुई कि क्यों न थोड़ी दूर पैदल चल लिया जाय। हमने चालकसे कहा कि 'भइया, तुम थोड़ी देर यहीं आराम कर लो, हम तबतक कुछ टहल लेते हैं।' वह मान गया और हम दोनों आगे बढ़ चले। वहाँ पर्वतका कुछ ऊँचा भाग था। हम उसपर चढ़ने लगे। तभी मेरी पत्नीको दो छोटे-छोटे सुन्दर-से पत्थर दिखायी दिये। वास्तवमें वे पत्थर बहुत आकर्षक लग रहे थे। हमने सोचा कि क्यों न हम इन्हें अपने घर ले चलें और वहाँ अपने पूजा-घरमें स्थापित कर देंगे। बड़े आदरके साथ उन्हें हम सँभालकर अपने पर्समें रखनेका प्रयास करने लगे। वहाँ आस-पास कोई नहीं था। हमारा ऑटो-चालक भी काफी दूरीपर था, हम दोनों बहुत प्रसन्न थे कि हम कोई अनमोल वस्तु लेकर जा रहे हैं। तभी लगभग ७-८ वर्षका एक बालक हमारे सामने अनायास ही आ खड़ा हुआ। उसका रंग साँवला था और उसके कन्धोंपर गमछा-जैसा एक पीला वस्त्र पड़ा था। उसने हमें सम्बोधित करते हुए बड़ी मीठी वाणीमें कहा—'भइया, यहाँ ते ये मति लै जइयो।'

मैंने कुछ दृढ़तासे कहा—'क्या ले जा रहे हैं?'

बालकने हमारे पर्सकी ओर संकेत किया और बोला—'ये तौ गिरिराजजी हतैं, इनकूँ वहीं रख दैइयो जहाँ ते उठाये हतैं…।' उस बालककी मधुर भाषासे मैं हैरान था, यह ठीक उसी प्रकारकी भाषा एवं मधुरता थी, जैसी किसी धार्मिक सीरियलमें बालरूप भगवान् श्रीकृष्ण बोलते हैं। मेरी पत्नीने कहा—'हम तो इन्हें ठाकुरजीके रूपमें अपने पूजाघरमें स्थापित करेंगे।'

बालक बोला—'नाय… नाय… लै गये तौ मुसीबतमें फँसि जाऔगे… और लौटिके फिर जहीं आनौ पड़ैगौ…।'

पत्नी तो इन्हें छुपाने भी लगी थी, परंतु मुझे लगा कि हमारी चोरी पकड़ी गयी। अतः मैंने किसी अनिष्टकी आशंकासे वे दोनों मोहक पत्थर पर्ससे निकालकर जहाँसे उठाये थे, वहीं सम्मानपूर्वक रख दिये और मन-ही-मन बालकका धन्यवाद किया। बालक हमारे सामने था। मैंने जेबसे कुछ पैसे बालकको दिये और फिर जैसे ही पलटकर देखा तो दूरतक उस बालकका कोई पता नहीं था। हम भौंचक्के से जल्दी अपने ऑटोके पास आये। चालकसे उस बालकके बारेमें पूछा तो उसने अनभिज्ञता प्रकट कर दी। मैंने पुनः उससे पूछा कि यहाँसे पत्थर आदि ले जाना उचित है? उसने भी बताया कि यहाँसे पत्थर आदि कोई चीज नहीं ले जाते हैं। मैंने फिर एक बार उस बालकका धन्यवाद किया जिसके परामर्शपर हम अनिष्टसे बच सके।'

मेरे मित्र और उनकी पत्नीके साथ घटी इस सुघटनाको मैं साक्षात् भगवद्दर्शन ही मानता हूँ; क्योंकि ब्रज-क्षेत्रमें तो श्रीजी एवं भगवान् श्रीकृष्णका सदा वास रहता ही है।—**नरेन्द्रकुमार शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

गर्व करना उचित नहीं

मैं बचपनसे ही खिलाड़ी प्रवृत्तिका छात्र रहा हूँ, यहाँतक कि मैंने खेलको ही अपनी हॉबी (शौक) बना रखा है। जिसका लाभ मैं ८० वर्षकी आयुका बूढ़ा होनेपर भी उठा रहा हूँ। मैंने स्थानीय सी०ए०एस० इण्टर कॉलेज, फरीदपुरसे सन् १९५३ ई० में विज्ञान वर्गसे हाई स्कूल परीक्षा पास की थी। विद्यालयमें इण्टरमें विज्ञान वर्ग न होनेके कारण मैंने बरेली कॉलेज, बरेलीमें ग्यारहवीं कक्षा (विज्ञान वर्ग)-में प्रवेश ले लिया। उस समय कॉलेजमें इण्टरसे ही कक्षाएँ प्रारम्भ होती थीं। मैं कॉलेजके बस-स्टैण्डवाले गेटकी ओर कालीबाड़ी मुहल्लेके किनारेपर ही कमरा किरायेपर लेकर रहने लगा।

कॉलेज गेटके पास ही पहले जुबली गार्डन था। मेरे सहपाठी महेन्द्र कुमार तैय्यल रोजाना प्रातः उस गार्डनके मैदानके लभग ३ कि०मी० दूरीके चक्कर लगाया करते थे। उनका यह शौक मात्र अपने स्वास्थ्यको ठीक रखनेभरके लिये था। चूँकि, वह मेरे कमरेके पाससे ही निकलता था, सो मैं भी उसके साथ गार्डनमें जाकर दौड़ने लगा, पर मेरी रुचि तो स्पोर्ट्समें थी। इसलिये अगले वर्ष जब कॉलेजके वार्षिक स्पोर्ट्स हुए, तो मैंने भी ३ कि०मी० की दौड़में हिस्सा लिया। पहलेसे चले आ रहे मुख्य धावक और पूर्व चैम्पियनके पीछे मैं भी लगकर दौड़ने लगा। मैं हर राउण्डमें उससे पिछड़ता गया, यहाँतक कि उसने सभी ८ राउण्ड पूरे कर लिये, जबकि मेरे ६ राउण्ड ही हो पायें; क्योंकि मैं लगभग सभीके पीछे था, इसपर मेरा उत्साहवर्धनके बजाय पवेलियनमें बैठे सभी दर्शक (लड़के-लड़कियाँ) तालियाँ बजाते हुए मेरा मजाक उड़ा रहे थे और मुझे निरुत्साहित कर रहे थे। पर मेरे इष्टदेव मुझे प्रेरित कर रहे थे और किसी प्रकारसे भी आठों राउण्ड पूरे करनेको प्रोत्साहित कर रहे थे, सो मैंने आठों राउण्ड पूरे कर ही लिये। दर्शकोंका मेरी सनकपर उपहास करना तो स्वाभाविक था, पर प्रथम स्थान प्राप्त किये धावक एवं पूर्व चैम्पियनने जो मेरी खिल्ली उड़ायी, वह मुझे इतनी चुभ गयी कि मैंने मनमें अपने इष्टदेवको साक्षी मानकर यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि अगले वर्ष फिर इसी मैदानपर तुमसे मिलूँगा। मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि उसके मनमें उत्पन्न हुए इस अभिमानको मेरे इष्टदेवने भी नोट कर लिया था।

अगले वर्ष मैंने इण्टर पास करनेके बाद कॉलेजके मेन हॉस्टल, जो कि आजकल पुलिस चौकीके रूपमें इस्तेमाल हो रहा है, में जाकर रहने लगा। साथ ही पढ़ाईका विशेष नुकसान न करते हुए मैं पासकी नवनिर्मित हॉकी-फील्डमें जाकर रोजाना प्रातः दौड़का कठोर अभ्यास करने लगा। प्रातः फील्डमें टहलनेवाले विद्यार्थी मुझे देखते और यही अनुमान लगाते कि इसे क्या फितूर सवार है, जो कि फील्डके ८-१० चक्कर रोजाना लगाया करता है, पर इस फितूरको तो मैं और मेरे आराध्यदेव ही समझते थे। यहाँपर यह बताना आवश्यक है कि कॉलेज चैम्पियन शहरमें कहीं और रहता था। उसे अपने ऊपर इतना गर्व था कि मुझसे उसे स्वप्नमें भी किसी प्रकारका लेशमात्र भी खतरा नहीं था।

हॉस्टलमें मेरे रूम पार्टनर श्रीयोगेश्वरप्रसाद गंगवार थे। उन्होंने इसी वर्ष फरीदपुरके उसी कॉलेजसे कला वर्गसे इण्टर पास करनेके बाद यहाँ बी०ए० प्रथम वर्षमें एडमीशन लिया था। उन्हें खेल-कूदमें किसी प्रकारकी रुचि नहीं थी, पर उन्होंने मेरी प्रतिज्ञाको भाँप लिया था, जिससे वे इस विषयमें मेरे शुभचिन्तक बन गये। आखिरकार दुबारा कॉलेजके वार्षिक स्पोर्ट्स प्रारम्भ हो गये। पैवेलियन कॉलेजके विद्यार्थियों एवं अन्य दर्शकोंसे खचाखच भर गया। दौड़ प्रारम्भ होनेका संकेत मिला और मैं भी गर्दन नीची करके अपनेको छिपाते हुए निर्धारित ट्रैकमें जाकर कुछ इरादेसे पूर्व चैम्पियनके पीछे जाकर खड़ा हो गया। वह मुझे पूर्वकी भाँति उपेक्षाकी दृष्टिसे घूर रहा था। खैर, दौड़की सीटी बजी और दौड़ प्रारम्भ हो गयी। मैं 'जय बजरंगबली' कहकर दौड़ पड़ा। पता नहीं, मुझमें कहाँसे बल आ गया कि पूर्व चैम्पियनको मैंने अपनी पूर्व हारकी स्थितिसे अधिक बुरी स्थितिसे हरा दिया। यही नहीं अन्य दौड़ोंमें भी उसे पछाड़ते हुए 'जय बजरंगबली' कहकर चैम्पियनशिप अपने नाम कर ली।

'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं' मैं भी इस बीमारीसे ग्रसित हो गया। मैंने यह समझते हुए कि अब मेरे बराबर कॉलेजमें कोई दूसरा धावक नहीं है, अपने नित्यके अभ्यासको काफी कम कर दिया। मेरे इष्टदेवने मेरे इस गर्वको भाँप

लिया और मुझे सबक सिखानेका निश्चय कर लिया।

अगले वर्ष १९५७ ई० में आगरा यूनीवर्सिटी स्पोर्ट्स मीट देहरादूनमें होनेकी तिथि घोषित हो गयी। उस समय पूरे मण्डलमें मात्र यही एक यूनीवर्सिटी थी, जिसके अन्दर लगभग ७०-७२ पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज आते थे। मीटकी विभिन्न स्पर्धाओंमें भाग लेनेके लिये कॉलेजमें खिलाड़ियोंका चयन होनेहेतु सभी खिलाड़ी सायं ५ बजे कॉलेजकी फील्डमें आकर एकत्र हो गये। कॉलेजके स्पोर्ट्स कोच स्वर्गीय एम०डी० सीरियाजी थे। मैं भी अपनी मित्रमण्डलीके साथ चुनावमें भाग लेनेके लिये हॉस्टलसे यहाँ पहुँच गया। कॉलेजका चैम्पियन होनेके कारण मैं गर्वसे लबरेज था; क्योंकि पूर्व चैम्पियन भी कॉलेज छोड़कर जा चुका था। मेरी दौड़ प्रारम्भ हुई, आखिरी राउण्डमें मेरे पीछे-पीछे देरसे दौड़ रहे एक धावक लड़केने एक लम्बा डैश लगाकर मुझे पछाड़ते हुए आगे निकलकर दौड़ जीत ली। मेरा सब गुरूर तहस-नहस हो गया। मेरे कोच एवं अन्य सभी मेरे साथी यह देखकर चकित रह गये। यह नया धावक अर्जुनसिंह यादव था, जिसने इसी वर्ष फैजाबाद कॉलेजसे आकर इस कॉलेजमें प्रवेश लिया था। वह मोहल्ला बिहारीपुरीमें रहता था तथा दौड़का अभ्यास अपने पासके राजकीय इण्टर कॉलेजकी फील्डमें किया करता था। उसके इस अभ्यासकी किसीको कानों-कान खबर नहीं थी। चूँकि हर स्पर्धामें दो-दो खिलाड़ी चुने जाते हैं, सो मैं भी चुन लिया गया। अन्य कॉलेजोंके खिलाड़ियोंकी तो बात ही दूर रही, मुझे अब अपने कॉलेजके अर्जुनसिंहसे ही भय लगने लगा। खैर, पूरी टीम कोच सीरियाजीकी देखरेखमें देहरादून पहुँच गयी।

शायद दिसम्बरका महीना रहा होगा। ठण्ड पूरे जोशसे पड़ रही थी। मैं अन्दरसे ही हतोत्साहित हो चुका था, फिर स्पोर्ट्समें ऐसा कुछ नहीं होता है, जो अचानकमें चमत्कार कर दे। सब कुछ कठिन अभ्यासपर निर्भर करता है। जिस दिन लम्बी दौड़ होनेवाली थी, उसी दिन रातमें मुझे कुछ फीवर भी हो गया, पर स्थिति कुछ ऐसी थी कि कॉलेजके लिये कुछ करो या फिर मरो। प्रात: उठकर थोड़ा-बहुत जो गर्म पानी मिल पाया, उससे उलटा-सीधा नहा-धोकर और हलका-सा नाश्ता लेकर फील्डमें पहुँच गया। ६०-६२ कॉलेजोंके ८०-८५ धावक सब एक साथ ट्रैकमें खड़े कर दिये गये। सबको 'रेडी' कहकर गनका फायर कर दिया गया और दौड़ प्रारम्भ हो गयी। जैसे-तैसे कर मेरा दौड़में २५वाँ स्थान रहा, जबकि अर्जुनसिंहको तीसरा स्थान (काँस्यपदक) मिला, जो कि इतनी बड़ी यूनीवर्सिटीमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। पूरी टीम बरेली वापस आ गयी, विभिन्न स्पर्धाओंमें विजयी छात्रोंका नाम नोटिस बोर्डपर लगा दिया गया। मेरे शुभचिन्तक अपने चैम्पियनका नामो-निशान कहीं न पाकर बहुत ही निराश हुए। इस घटनाने मुझे अन्दर-ही-अन्दर बिलकुल घायलकर रख दिया और तब मैंने अपने अन्दर उत्पन्न गर्वके लिये अपने आराध्यदेव श्रीहनुमन्तलालसे रातके बारह बजेतक जागकर क्षमा-याचना की और उनसे वायदा किया कि अब अभ्यास और प्रयासमें कोई कसर नहीं छोड़ूँगा, बाकी आप जानें; क्योंकि एक माह बाद कॉलेजके वार्षिक स्पोर्ट्स आनेवाले थे, जिसमें अब मेरा मुकाबला यूनीवर्सिटी काँस्य पदक-विजेता अर्जुनसिंहसे होना था। इस मुकाबलेमें मैं सरेआम पब्लिकके सामने अर्जुनसिंहको न हरा पाया, तो मेरा स्पोर्ट्स कैरियर ही घुटकर रह जायगा। अबतक विज्ञानवर्गका छात्र होते हुए भी जो स्पोर्ट्समें सम्मान हासिल किया था, वह बिलकुल मटियामेट हो जायगा और फिर ऐसा होनेपर मुझे कॉलेज ही छोड़ देना पड़ेगा।

इस वर्ष मैं बी०एस-सी० द्वितीय वर्ष का छात्र था। फिर भी मेरे दिमागमें हर समय स्पोर्ट्समें खोये हुए सम्मानको पुनः अर्जित करनेका फितूर सवार रहता था। इसलिये मैंने पुनः दौड़का अभ्यास गुप्त रूपसे चालू कर दिया। मैंने अपने कोच श्रीसीरियाजीसे लम्बी दौड़ (क्रासकन्ट्री ७-८ कि०मी०)-का रूट जान लिया। यह रूट वर्तमानके आर०टी०ओ० ऑफिसके सामने श्रीहनुमान्जीके मन्दिरसे प्रारम्भ होकर जाट रेजीमेण्टके तोपवाले गेटसे अन्दर होते हुए पूरे कैण्ट एरियाको पारकर गांधी उद्यानसे होकर बरेली कॉलेजके पागलखानेवाले गेटसे अन्दर जाकर मेन हॉस्टलके सामने समाप्त होना था, फिर क्या था? मैं रोजाना प्रात: ४ बजे उठकर अपने पार्टनर श्रीयोगेश्वरप्रसादजीके साथ उनकी साइकिलपर बैठकर हनुमान मन्दिरके सामने निर्धारित स्थानपर पहुँचा करता था। सभी फालतू कपड़े उतारकर साइकिलपर लाद देता था, साथ ही गंगवारसे साइकिल अपने आगे-आगे

कुछ अपनेसे तेज स्पीडसे चलवाता था और मैं उन्हें कवर करनेका प्रयास किया करता था। इस प्रकार लगभग मैंने एक माहतक घोर अभ्यासकर अपने अन्दर एक-सी कुछ तेज स्पीड बनाये रखनेका स्टैमिना बना लिया था। वैसे प्राय: लम्बी दौड़में धावक शुरूमें कुछ धीरे स्पीडसे दौड़ते हैं, बादमें स्पीड बढ़ाकर डैश लगाकर दौड़को समाप्त करते हैं।

मेरे इस अभ्यासको हॉस्टलमें रह रहे एक-दो घनिष्ठ साथियों एवं कोच सीरियाजीको ही पता था। अर्जुनसिंहको तो कानों-कान खबर नहीं थी, कि मैं कुछ कर भी रहा हूँ। वह तो मेरे स्पोर्ट्स कैरियरको देहरादूनकी हारसे लगभग समाप्त ही समझ बैठा था। जब कभी मुलाकात भी हो जाती थी, तब वह बड़े गर्ववाली दृष्टिसे सीना फुलाकर नमस्कार करता और कहता कि आजकल बड़े खोये-खोयेसे रहते हो। वार्षिक स्पोर्ट्स आनेवाले हैं, कुछ कर नहीं रहे हो?

आखिरकार वार्षिक स्पोर्ट्स आ गये। क्रास कन्ट्रीका आयोजन हुआ। एन०सी०सी० विभागकी गाड़ी मँगायी गयी। उसमें बैठाकर सभी धावक गन्तव्य स्थान आर०टी०ओ० ऑफिसके सामने पहुँचा दिये गये। प्रात: ७ बजेका समय रहा होगा। मौसम ठण्डा था। सभी धावकोंने अपने-अपने फालतू कपड़े उतारकर गाड़ीमें रख दिये। मैंने अपने एक-दो साथी साइकिलसे लगा रखे थे, जो कि मुझे अर्जुनसिंहकी लोकेशनकी समय-समयपर सूचना देते रहेंगे। सभी धावक एक साथ स्टार्टिंग प्वाइन्टपर खड़े हो गये। 'रेडी' कहकर फायर हुआ और सभी धावक दौड़ पड़े। मैं भी 'जय बजरंगबली' कहकर दौड़ लिया। अपनी तेज स्पीडके कारण धीरे-धीरे धावकोंको पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ने लगा। यहाँतक कि अर्जुनसिंहको भी पास करते हुए आगे निकल गया। मेरे बारेमें अर्जुनसिंह यही समझा कि अन्य नये धावकोंकी तरह यह भी कुछ दूर जाकर और हाँफकर गिर जायगा, फिर इसे पीछे-पीछे चल रही गाड़ीमें लाद दिया जायगा। हाँ, दौड़के दरम्यान एक सरदार धावकने मुझे आगे निकलता देख मेरे पैरोंको चोटिल करनेहेतु अपने पैरका स्पाइक (जूता) फँसानेका प्रयास किया, जिसे मेरे साइडमें साइकिलसे चल रहे। मेरे साथी मित्रने देख लिया और सरदारजीको तुरंत बुरी तरहसे हड़का दिया। जब मैं पूरा कैन्ट एरिया पारकर कम्पनी गार्डन (वर्तमानमें गांधी उद्यान)-के पास पहुँचा तो साथीसे पता चला कि अर्जुनसिंह लगभग २०० मी० पीछे है और भयानक स्पीडको धारण किये हुए लगातार आगे बढ़ता चला आ रहा है। मैं जब कॉलेजके पिछले पागलखानेवाले गेटके पास पहुँचा, तब पता चला कि वह अब मात्र १०० मी० की दूरीपर है। फिर क्या था, मैंने 'जय बजरंगबली' कहकर हुँकार भरी और डैश लगाते हुए भयानक स्पीड धारण कर ली। गेटसे फिनिशिंग प्वाइन्ट (मेन हॉस्टलके सामने)-की दूरी लगभग ४०० मी० होगी। जिसे मैंने पता नहीं कहाँसे और किसका अतिरिक्त बल प्राप्तकर कुछ ही समयमें पूरा कर डाला। आँखोंके सामने एकदम अँधेरा छा गया और मैं प्वाइन्टपर खड़े कोच सीरियाजीके बाहोंमें जाकर प्रथम स्थान प्राप्तकर समा गया। इस दौड़को देखनेके लिये हजारोंकी संख्यामें छात्र एवं छात्राएँ मौजूद थे। मुझे कुछ कपड़े पहनवाकर हॉस्टलके मेरे कमरे में पहुँचवा दिया गया, जहाँ मैं जाकर दीवारपर लगे अपने इष्टदेव हनुमन्तलालजीको आँखोंमें भर आये खुशीके आँसुओंसे निहारता हुआ चारपाईपर जाकर पसर गया। उधर दो-तीन मिनट बाद अर्जुनसिंह हाँफता हुआ आया और अपनेको प्रथम समझते हुए उसने कोच सीरियाजीसे पूछा कि गंगवारका क्या रहा? वह तो मेरेको पास करता हुआ आगे आया, पर बादमें उसका पता ही नहीं चला! कहीं अन्य असफल धावकोंकी तरह गाड़ीमें तो नहीं पड़ा है। सीरियाजीने बताया कि मिस्टर आप सेकेण्ड रहे, वह तो प्रथम स्थान प्राप्तकर हॉस्टलमें अपने कमरेमें आराम कर रहा है। अर्जुनसिंह मेरे कमरेमें पहुँचा। उसे देखकर मैं तुरंत उठ बैठा और प्रेमसे उसे अपने पास बैठनेका संकेत दिया। मेरे इस व्यवहारको मेरे आराध्यदेव देख रहे थे और वे नोट कर रहे थे कि मुझे अपनी महान् जीतपर कहीं गर्व तो नहीं हो गया है। उसने मुझसे पूछा कि गंगवार! तूने तो आज कमाल कर दिया। इतनी दम यदि देहरादूनमें लगाता तो तू तो प्रथम आये धावकको भी मात दे देता, जो कि मुझसे मात्र ४-५ मीटर आगे था। बता, इतनी दम आज तुझमें कहाँ-से आ गयी? मैंने उसके कन्धेपर हाथ रखकर श्रीहनुमन्तलालजीके चित्रकी ओर इशारा करते हुए कहा कि इस सबका उत्तर इनसे पूछो, मैं तो इनका एक तुच्छ स्वार्थी दास हूँ।—**शम्भूदयाल गंगवार**

मनन करने योग्य

परिहासका दुष्परिणाम

द्वारकाके पास पिंडारकक्षेत्रमें स्वभावतः घूमते हुए कुछ ऋषि आ गये थे। उनमें थे विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा नारदजी-जैसे त्रिभुवनवन्दित महर्षि एवं देवर्षि। वे महापुरुष परस्पर भगवच्चर्चा करने तथा तत्त्वविचार करनेके अतिरिक्त दूसरा कार्य जानते ही नहीं थे।

यदुवंशके राजकुमार भी द्वारकासे निकले थे घूमने-खेलने। वे सब युवक थे, स्वच्छन्द थे, बलवान् थे। उनके साथ कोई भी वयोवृद्ध नहीं था। युवावस्था, राजकुल, शरीरबल एवं धनबल और उसपर इस समय पूरी स्वच्छन्दता प्राप्त थी। ऋषियोंको देखकर उन यादव-कुमारोंके मनमें परिहास करनेकी सूझी।
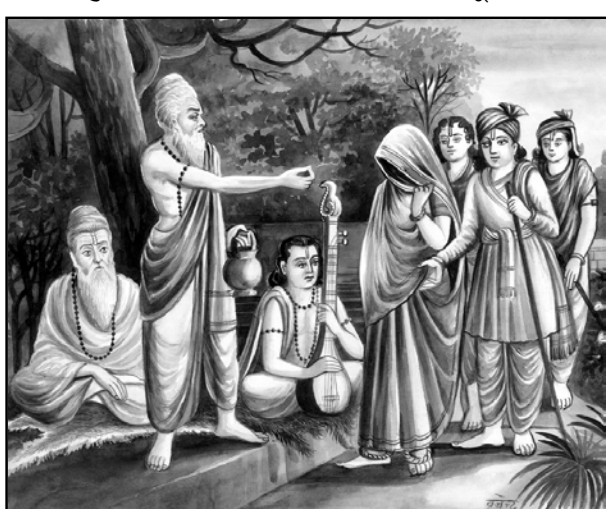
जाम्बवतीनन्दन साम्बको सबने साड़ी पहनायी। उनके पेटपर कुछ वस्त्र बाँध दिया। उन्हें साथ लेकर सब ऋषियोंके समीप गये। साम्बने तो घूँघट निकालकर मुख छिपा रखा था, दूसरोंने कृत्रिम नम्रतासे प्रणाम करके पूछा—'महर्षिगण! यह सुन्दरी गर्भवती है और जानना चाहती है कि उसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा। लेकिन लज्जाके मारे स्वयं पूछ नहीं पाती। आपलोग तो सर्वज्ञ हैं, भविष्यदर्शी हैं, इसे बता दें। यह पुत्र चाहती है, क्या उत्पन्न होगा इसके गर्भसे?'

महर्षियोंकी सर्वज्ञता और शक्तिका यह परिहास था। दुर्वासाजी क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—'मूर्खो! अपने पूरे कुलका नाश करनेवाला मूसल उत्पन्न करेगी यह।'

ऋषियोंने दुर्वासाका अनुमोदन कर दिया। भयभीत यादव-कुमार घबराकर वहाँसे लौटे। साम्बके पेटपर बँधा वस्त्र खोला तो उसमेंसे एक लोहेका मूसल निकल पड़ा।

अब कोई उपाय तो था नहीं, यादव-कुमार वह मूसल लिये राजसभामें आये। सब घटना राजा उग्रसेनको बताकर मूसल सामने रख दिया। महाराजकी आज्ञासे मूसलको कूटकर चूर्ण बना दिया गया। वह सब चूर्ण और कूटनेसे बचा छोटा लौहखण्ड समुद्रमें फेंक दिया गया।

महर्षियोंका शाप मिथ्या कैसे हो सकता था। लौहचूर्ण लहरोंसे बहकर किनारे लगा और एरका नामक घासके रूपमें उग गया। लोहेका बचा टुकड़ा एक मछलीने निगल लिया। वह मछली मछुओंके जालमें पड़ी और एक व्याधको बेची गयी। व्याधने मछलीके पेटसे निकले लोहेके टुकड़ेसे बाणकी नोक बनायी। इसी जरा नामक व्याधका वह बाण श्रीकृष्णचन्द्रके चरणमें लगा और यादव-वीर जब समुद्र-तटपर परस्पर युद्ध करने लगे मदोन्मत्त होकर, तब शस्त्र समाप्त हो जानेपर एरका घास उखाड़कर परस्पर आघात करते हुए उसकी चोटसे समाप्त हो गये। इस प्रकार एक विचारहीन परिहासके कारण पूरा यदुवंश नष्ट हो गया। जो योद्धा महाभारत-जैसे महाविनाशकारी महासमरमें भी बच गये थे, वे भी इसमें काल-कवलित हो गये। [**श्रीमद्भागवतमहापुराण**]

बोध-कथा—

साधुके लिये स्त्री-दर्शन ही सबसे बड़ा पाप

श्रीचैतन्य महाप्रभु संन्यास लेकर जब श्रीजगन्नाथपुरीमें रहने लगे थे, तब वहाँ महाप्रभुके अनेक भक्त भी बंगालसे आकर रहते थे। महाप्रभुके उन भक्तोंमें बहुतसे अत्यन्त विरक्त भक्त थे। उन गृहत्यागी साधु भक्तोंमें ही एक थे छोटे हरिदासजी। ये संगीतज्ञ थे और अपने मधुर कीर्तनसे महाप्रभुको प्रसन्न करते थे; इसलिये इनको कीर्तनिया हरिदास भी लोग कहते थे।

पुरीमें महाप्रभुके अनेक गृहस्थ भक्त भी थे। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें हिसाब-किताब लिखनेका काम करनेवाले श्रीशिखि माहिती, उनके छोटे भाई मुरारि और उनकी विधवा बहिन माधवी—ये तीनों ही परम भक्त थे। महाप्रभुके चरणोंमें इनका अनुराग था। इनमें भी शिखि माहिती और माधवी देवीको तो महाप्रभु भगवत्कृपाप्राप्त भागवतोंमें गिनते थे।

महाप्रभुको पुरीके भक्तगण कभी-कभी अपने यहाँ भिक्षाके लिये आमन्त्रित करते थे। एक दिन जब भगवानाचार्यके यहाँ महाप्रभु भिक्षाके लिये पधारे, तब भिक्षामें सुगन्धित सुन्दर चावल बने देखकर उन्होंने पूछा—'आपने ये उत्तम चावल कहाँसे मँगाये हैं?'

भगवानाचार्यने कहा—'प्रभो! माधवी देवीके यहाँसे ये आये हैं?'

महाप्रभु—'माधवीके यहाँ चावल लेने कौन गया था?'

भगवानाचार्य—'छोटे हरिदास।'

यह सुनकर महाप्रभु चुप हो गये। भिक्षा ग्रहण करनेका जैसे उनमें उत्साह रहा ही नहीं। भगवत्प्रसाद समझकर कुछ ग्रास मुखमें डालकर महाप्रभु उठ गये। अपने स्थानपर आकर उन्होंने आदेश दिया—'आजसे छोटा हरिदास मेरे यहाँ कभी नहीं आ पायेगा। उसने कभी भूलसे भी यहाँ पैर रखा तो मैं बहुत असन्तुष्ट होऊँगा।'

महाप्रभुके सेवक तो स्तब्ध रह गये। समाचार पाकर छोटे हरिदास बहुत दुखी हुए; किंतु महाप्रभुने किसी प्रकार उन्हें अपने पास आनेकी अनुमति नहीं दी। सभी भक्तोंने प्रार्थना की, श्रीपरमानन्दपुरीजीने भी महाप्रभुसे कहा—'हरिदासको क्षमा कर दीजिये!' परंतु महाप्रभुने बहुत रुक्ष-भंगी बना ली थी। वे पुरी छोड़कर अलालनाथ जाकर रहनेको प्रस्तुत हो गये। छोटे हरिदासने अन्न-जल त्याग दिया; परंतु उनके अनशनका भी महाप्रभुपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।
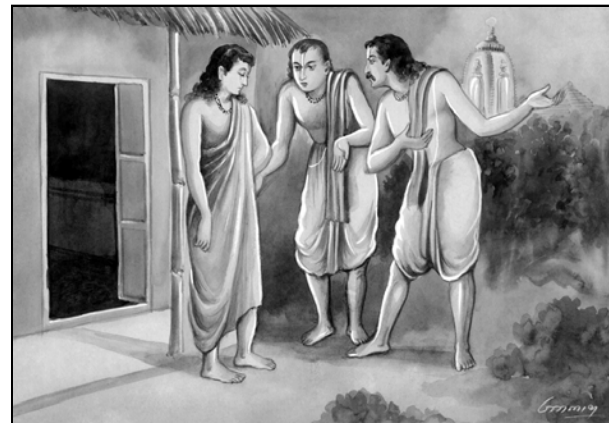
अन्तमें दुखी होकर छोटे हरिदास पुरीसे पैदल चलकर प्रयाग आये और वहाँ उन्होंने गंगा-यमुनाके संगममें देहत्याग कर दिया। यह समाचार जब महाप्रभुको मिला तब उन्होंने कहा—'**साधु होकर स्त्रियोंसे बातचीत करे, उनको चरण छूने दे, यह तो महापाप है। हरिदासने अपने पापके उपयुक्त ही प्रायश्चित्त किया है।**' महाप्रभुने ही एक बार सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा था—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
संदर्शनं विषयिणामथ योषितां च
हा हन्त! हन्त! विषभक्षणतोऽप्यसाधु:॥

अर्थात् भवसागरसे भलीभाँति पार जानेकी इच्छावाले निष्किंचन भगवद्भजनोन्मुख व्यक्तिके लिये विषयासक्त मनुष्यों और नारियोंका अवलोकन विष-भक्षणसे भी अधिक अनिष्टकर है।

श्रीगीता-जयन्ती [२९ नवम्बर, २०१७ ई०]

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६ । ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्‌में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), बुधवार, दिनाङ्क २९ नवम्बर, २०१७ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

—सम्पादक

नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम		मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम		मूल्य ₹
2094	गीता-माधुर्य	(नेपाली)	१५	2091	सावित्री और सत्यवान्	(बँगला)	५
2095	प्रश्नोत्तरमणिमाला	(नेपाली)	१८	2092	नल-दमयन्ती	(बँगला)	६
2096	उपनिषद्‌का चौध रत्न	(नेपाली)	१०	2093	गीता पढ़नेके लाभ	(बँगला)	४
2097	विदुरनीति	(नेपाली)	२०	2087	सुख-शान्तिपूर्वक जीनेकी कला	(बँगला)	१०
2090	भूले न भुलाये	(ओड़िआ)	२२	2089	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	(तेलुगु)	१००
2106	श्रीदुर्गासप्तशती	(मलयालम)	४५	2099	सरल गीता	(दो रंगोंमें)	३५

प्र० ति० २०-१०-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

जनवरी २०१८ का विशेषाङ्क '**श्रीशिवमहापुराणाङ्क**'-हिन्दी भाषानुवाद, श्लोकाङ्कसहित-उत्तरार्ध, जनवरीके प्रथम सप्ताहसे ही भेजनेका प्रयास है। **रजिस्ट्रीसे विशेषाङ्क प्राप्त करनेके लिये सदस्यता-शुल्क यथाशीघ्र भेजें।**

गीताप्रेसकी निजी दूकानोंपर भी सदस्यता-शुल्क छपी रसीद प्राप्त करके जमा कर सकते हैं। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क दिसम्बरके मध्यतक प्राप्त नहीं होगा उन्हें बादमें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क भेजा जायगा।

कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् २०१८ के लिये **वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ २५० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।** कल्याणके विषयमें जानकारीके लिये 09235400242 अथवा 09235400244 पर सम्पर्क करें।

वार्षिक-शुल्क—₹२५०। पंचवर्षीय-शुल्क—₹१२५०

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१८) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७५
बँगला (**कोड 1489**), ओड़िआ (**कोड 1644**), तेलुगु (**कोड 1714**) प्रत्येकका मूल्य ₹ ७५

पुस्तकाकार—	सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹ ६०
पॉकेट साइज—	सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹ ३५
लघु आकार—	सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 1769)— विशेष प्रकारके पतले पेपरपर	मूल्य ₹ २०

आयुर्वेदिक ओषधियाँ उपलब्ध हैं

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान (गीताप्रेस, गोरखपुर व्यवस्थाद्वारा संचालित) पो० स्वर्गाश्रममें **शुद्ध गंगाजलके योगसे,** वैज्ञानिक तकनीकसे योग्य वैद्योंकी देख-रेखमें प्राकृतिक जड़ी-बूटियोंद्वारा नाना प्रकारकी आयुर्वेदिक औषधियोंका निर्माण होता है, जिसे वैज्ञानिक तकनीकसे सीलबन्द किया जाता है। ये औषधियाँ गीताप्रेस, गोरखपुरकी अनेक शाखाओंमें एवं अनेक स्टेशन-स्टालोंपर भिन्न-भिन्न परिमाणमें उपलब्ध हैं। अधिक जानकारीके लिये निम्नलिखित पतेपर प्रातः 8:30 से दोपहर 12:00 और दोपहर 1:00 से सायं 5:00 बजेके बीचमें सम्पर्क करना चाहिये—

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान

(गोबिन्दभवन-कार्यालय कोलकाता का संस्थान)

पो०-स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), पिन 249304; फोन नं० 0135-2440054

Whatsapp No.-7088002303; e-mail : gbas.gitabhawan@gmail.com; web site-gitapressayurved.com